निर्वसना

श्री गोपाल आचार्य



सूर्य प्रकाशन मन्दिर
बीकानेर

प्रथम संस्करण १९६५
मूल्य पांच रुपये पचास पैसे
आवरण गौतम

प्रकाशकीय

सूर्य प्रकाशन मन्दिर के प्रकाशनों की शृंखला में श्री गोपाल आचार्य का नवीन उपन्यास निवसना एक नवीन कड़ी है। उपन्यास निवसना आपके हाथों में पहुचाते हुए हमें अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है।

इस अवसर पर हम उन सभी इष्ट मित्रों और सहयोगियों के आभारी हैं जिन्होंने इस अवसर पर सहयोग दिया। विशेषतः आभारी हूँ श्री गौतमजी श्री श्यामजी (संचालक, प्रभात प्रकाशन दिल्ली) तथा भाई देवेन्द्रकुमारजी मुथड़ा का जिन्होंने इस अवसर पर अत्यधिक सहयोग दिया।

प्रकाशन सम्बन्धी सुझाव अभिनन्दनीय हैं।

राजेन्द्र बिस्सा
व्यवस्थापक

अपनी ओर से

निवसना एक ऐसी रमणी के जीवन का चित्र है जो परिस्थितियों द्वारा समाज के एक विलासमय जगत मे ढकेल दी गई थी। शरीर मे गिरने पर भी आत्मा से वह कभी नहीं गिरी। उसने अवसर आने पर जीवन के नये मूल्यो पर विचार किया और उन्हें आदर्श समझकर जीवन मे अनुसरण किया। जीवन की वास्तविकता से वह दूर नही गई। समाज की प्रस्तुत परिस्थितियो मे जीवन के मूल्यो का क्या महत्त्व होगा यह स्वय उदार पाठक निश्चित करें।

श्री गोपाल आचार्य

गजनेर रोड,
बीकानेर

निर्वसना

निर्वसना

१

चित्रकार अपनी चित्रशाला में एक नए अपूर्ण चित्र पर कार्य कर रहा था। उसके दाहिने हाथ में तूलिका थी और बाएँ में विभिन्न रंग लेपों की एक समतल पटिया। उसके सामने एक आधार पर उसकी कलाकृति धीरे-धीरे छाया-रूप से शनैः विकास पा रही थी और उससे थोड़ा दूर काष्ठ आश्रित एक पार-दर्शी शीशे कक्ष में उसकी प्रेरक प्रतिमा का इस समय आवास था। कलाकार अपनी कृति के निर्माण में तन्मय था। अपनी तूलिका से चित्र को कुछ मृदुल स्पर्श देते हुए चित्रकार ने उसको अमर देखने की उत्कंठा में अपने आपको कुछ पाँव पीछे सरकाया। इस तरह दूरस्थित उसकी दृष्टि अब कभी चित्र पर और कभी सजीव प्रेरक प्रतिमा पर आन्दोलित होने लगी। कुछ ही क्षणों में वह पुनः अपनी कृति के पास सरक आया। तूलिका और रंग पटिया को समीपस्थ एक आधार शिला पर रखते हुए उसने कहा—"पूर्णिमा! जल-कण पुनः सूख चले हैं। तुम्हें एक बार और कष्ट करना होगा।" और साथ ही अपने चित्र के सहारे एक ऊँचे आसन पर वह बैठ गया। उसने अपनी जेब से एक सिगरेट निकाली और पीते-पीते धूम्र विनोद करने लगा। उसकी प्रतिमा अब भी उसके सामने ही थी। देखते देखते कक्ष स्थित मूर्ति में सजीव गति दृष्टिगोचर हुई। उसने सुना—

"आज बहुत देरी लग रही है अशोक बाबू।"

'हाँ पूर्णिमा। सद्यस्नाता के लिए जलकण सौन्दर्य बिन्दु हैं। यह सौन्दर्य इतना चंचल है कि मस्तिष्क में ठहरता ही नहीं। अब अस्वाभाविक होने से डरता हूँ पूर्णिमा।'

'कलाकार कल्पना से काम नहीं ले सकता, अशोक बाबू?'

'मैं नहीं ले सकता, पूर्णिमा। मेरी अपनी सीमाएँ हैं। सद्यस्नाता के

सौन्दय को स्मतिपट पर यथावत सजाव रखने म आज अपने-आपको अस मथ पा रहा हू। दष्टि से दूर होते ही जो सौन्दय स्मृतिपट पर आन स इन्कार करे उसकी कल्पना कसे करू पूर्णिमा।'

'आह! साथ ही एक मधुर हास्य चित्रशाला म गुजित हो उठा। चित्रकार और उसके चित्र की सजीव प्रतिमूर्ति के बीच अब तक घूमका एक भीना पर्दा-सा चचल हो उठा था। अशोक ने देखा कि पूर्णिमा का दन्त-पक्तिमुक्ता-आभा स भी अधिक आकषक है। शीश कक्ष क नीलिमा युक्त शुभ्र प्रकाश म उसकी शरीरश्री सौगुने प्रभाव स उसके सामने प्रकाशित हो उठी।

पूर्णिमा उठी और कुछ ही क्षणा मे स्नान कर झरते केशो वही आकर यथावत बठ गई। अशोक ने भी अपनी तूलिका और रग सभाल लिय। क्षण भर मे ही उसक मुह से शब्द निकले— मुक्त वेणी का वक्षप्रदेश से सभालने की आवश्यकता नही, पूर्णिमा।

फिर कसे?

जसे बठी हो बस ही ठीक है। अधिक हिली डुली तो फिर स्नान करना होगा। उरोज छिप रहे हैं पूर्णिमा। बाहु को कुछ पीछे करो। ग्रीवा को भुकाओ नहीं। पलको को खुला रखो।

और अपनी प्रतिमा को देख देखकर वह पुन अपने चित्र के रग भरने लगा। थोड़ी देर के बाद पूर्णिमा फिर बोल उठी—

और कितनी देर लगेगी अशोक बाबू?

अधिक नही पूर्णिमा। आज इतना कष्ट द ही इसलिए रहा हू कि बार-बार देखकर ही शायद इस सौन्दय को स्मतिपट पर सुरक्षित रख सकू। कल्पना क लिए आधार की आवश्यकता तो हर कलाकार को होती ही होगी पूर्णिमा!

और साथ ही कुछ स्मित रेखाए उसक चेहरे पर खेल गइ।

इसी क्षण दीवार की घडी न एक एक करके नौ बजा दिय। ठीक इसी समय द्वार क पास वाली बिजली की घटी भी बज उठी। अशोक न तूलिका और रग-पटिया क्षण भर द्वार की ओर देखकर आधार शिला पर रख दिये। पूर्णिमा का आश्चर्य दन हुए उसन कहा— वस्त्र पहन लो पूर्णिमा।

तुम्हारी इच्छा पूरी हुई तो। कोई आ ही गया आखिर।'

और इतना कह उसने अपने समीपस्थ के एक बटन को दबाकर शीश कक्ष में अंधेरा कर दिया व स्वयं आगन्तुक के लिए द्वार खोलने चल दिया।

द्वार खुले। आगन्तुक पर दृष्टि पड़ते ही अशोक ने शिष्टाचार के साथ उसे अन्दर आने के लिये निवेदन किया। आगन्तुक प्रवेश करते-करते ही बोलने लगा—

"क्षमा करना, अशोक बाबू। कुछ काम ही ऐसा था, कि पूर्व सूचना दिए बिना ही ऐसे समय आना पड़ा।

"इससे अधिक प्रसन्नता और क्या हो सकती है, कि आप पधारे। बड़ भाग्य ! मेरे लिए आपका।"

'बहुत आवश्यक काय है अशोक बाबू ! इतना आवश्यक, कि उसके पूर्ण हुए बिना तो काम नहीं चल सकता।'

मैं किसी रूप में काम आ सकूंगा तो ?'

'क्या कहने हैं अशोक बाबू ! वाह वाह ! आपने तो आते ही तबियत खुश करदी। हमें तो सहारा ही सारा आपका है। बड़े नम्र हैं। परमात्मा सुख रखे।"

दोनो व्यक्ति साथ-साथ चलने लगे। चिकना चमकीला फर्श था। दीवारों पर दानो ओर कलात्मक ढंग से कलापूर्ण चित्र टंगे थे। बिजली की बत्तियां एक विशेष प्रकार से उनपर अपना प्रकाश फैला रही थी।

"काम कैसा चल रहा है ?

"बहुत अच्छा। सब आपकी कृपा है।'

कुछ ही क्षणो में दोनों व्यक्तियों ने चित्रशाला के गलियारे को पार कर लिया व वे इसके अन्तरंग विशाल कक्ष में आ प्रविष्ट हुए। चित्रशाला का यह एक विशाल कक्ष एक कुशल कलाकार की सुरुचि के साथ सजा हुआ था। चित्र तो थे ही, साथ-साथ विशेष स्थानो पर मूर्तिकला के उत्कृष्ट नमूने भी यहां दर्शकों को देखने को मिल सकते थे। गलियारे के दाहिनी ओर चित्रकार के लिए काम करने की जगह थी जिसके पास ही सामने सजीव प्रतिमाओं के लिए शीश-आवास आयोजित था। बाईं ओर मित्रों व आगन्तुकों के बैठने व विश्राम करने के लिए उचित स्थान था जहां कुछ कुर्सियां, दो

मजे थे दो सोफासेट सुसज्जित थे। अशोक आगन्तुक को इसी दिशा में लिया गया और बैठने का निवेदन करते हुये बोला —

मेरी अनुपस्थिति कुछ क्षण के लिए क्षमा करें। मैं आपके लिए चाय ले आऊं।

इतना वह अशोक ने अन्य दिशा में पाव बढ़ाये ही थे कि उसे सुनाई दिया— अभी ठहरिये अशोक बाबू! उसके लिए अभी इतनी जल्दी नहीं है। एक मित्र और आने वाले हैं। मेरे साथ ही थे पर राह में कहीं उलझ गये। मैं तो आगे इसलिए चला आया कि आपको रोक सकू।

आगन्तुक के आग्रह पर अशोक रुका नहीं। बोला—

'मैं आपके चाय प्रेम से सुपरिचित हू मनजर साहब! इसके लिए तो आप छोटे-बड़े सभी अपराध क्षमा कर देते हैं।

और वह चला गया। आगन्तुक ने भी अपने आपको अब स्वतन्त्र से विशाल सोफे पर फैला दिया। कुछ ही देर में उसके मुह से शब्द निकल पड़े—'चाय पानी पीना इन दिनों तो सब हराम हो रहा है। अब तो *इच्छा होती है कि एक बार*

शेष शब्द वक्ता के मुह में ही रहे कि एक बार और द्वार के पास वाली बिजली की घंटी अपने समस्त वेग के साथ बज उठी। पूर्वागन्तुक व्यक्ति सभलकर अपने स्थान पर एक बार तो उठ बैठा पर ज्यो ही चित्रशाला के गलियारे को पार कर उसने अपने साथी मित्र को इस विशाल कक्ष के आगे मन्त्र देखा तो वह बोल पड़ा—

आगे चले आइये पंडितजी! मालूम होता है कि आज तो शुभ मुहूर्त से ही घर से विदा हुए थे।

'आपके मित्र यही हैं तो ?

बिलकुल! और देखिये चाय भी आ रही है।

आपको और चाहिये ही क्या।

अशोक बाबू ने दूर से नवागन्तुक व्यक्ति को अनुमान से पहचानते हुए हाथ जोड़ अभिवादन किया। पास पहुचते पहुचते तो स्वय ही वह अपने परिचय में बोल उठा—

लोग मुझे अशोक नाम से पुकारते हैं। कला को बदनाम करता हू।

चित्र मेरी जीविका है।'

नवागन्तुक व्यक्ति अशोक के स्वाभाव की सहज सरलता देख मन मुग्ध सा उसकी ओर देखने लगा। पास ही पड़ी एक मेज को नवागन्तुक व्यक्ति के आगे रखते हुए अशोक ने प्रश्न किया—

'क्या श्रीमान से यह पूछने की धृष्टता कर सकता हू, कि इस समय इस तुच्छ प्राणी को किस महान विभूति की उपस्थिति मे खडे रहने का सौभाग्य प्राप्त है।' अब तक अशोक के सकेत पर पास ही खडे सेवक ने चाय की सामग्री मेज पर रख दी थी। अशोक ने इस उत्तर म सुना— श्रीमान के इस दर्शनाभिलाषी को लोग हृदयेश कहकर पुकारते है। इन दिनो उसे श्रीमान के ही मित्र की सेवा का गौरव प्राप्त है। इस सेवक की जीवनी उसकी लेखनी पर आश्रित है अशोक बाबू।'

'मैं तो सोच रहा था कि एक ही सभ्य सभ्यता की इतिश्री कर रहा है। पर, आप तो दाना ही ने मर अधिकार पर आरी चलादी।' वाणी मैनेजर महोदय की थी। सुनकर हृदयेश ने हसते हुए उत्तर दिया— 'आपा रिक सबध स्थापित करने म ही ततीय व्यक्ति की आवश्यकता होती है मनेजर सहाब ! पारस्परिक आकर्षण के सिलसिले म तो आपकी सभ्यता का मध्यस्थ ततीय व्यक्ति सदैव बाधक ही सिद्ध होता है। क्षमा कीजिए, इस ततीय व्यक्ति की आवश्यकता नहीं थी मनेजर साहब !'

"इस नई सभ्यता का तो हम देख चुके। अब इस पुरानी को देखो जिससे कुछ हासिल होगा।' और इतना कहते-कहते मैनेजर महोदय ने चाय की प्रस्तुत प्याली उठा ही ली। थोडी देर म तीनो व्यक्ति हिले मिले आराम से चाय पान करने लगे। गरम पेय के दो-एक घट गले से नीचे उतारने के बाद मनेजर साहब बोले—'कला कुछ है जमाना कुछ और चाहता है अशोक बाबू।

'जमाना कुछ है आप उसे कुछ और देना चाहते हैं यह क्या नहीं, मनेजर साहब।'

यही तो इतने मैं भी कहता हू अशोक बाबू। जमाना कुछ है आप उसे कुछ और देना चाहते हैं सुन लिया मनेजर साहब !'

'एक अरसे म यही सुन रहा हू। अब समझने भी लगा। पर यह समझे

महल देरी से, बहुत महंगी कीमत पर मिली है अशोक बाबू। अब परिस्थिति ऐसी है कि सब कुछ पास का खो चुका हूं। उधार के घर भी सारे बन्द हो चुके हैं। सिवाय नाटक कम्पनी के और कुछ करने के लायक अब हूँ भी नहीं। मैं तो सर्वथा निराश हो ही चुका था। इतना कह उन्होंने एक बार और चाय की प्याली को अपने होठों से लगा लिया। दो एक चुस्की लेने के बाद वे पुनः बोलने लगे— पिछले शनिवार हृदयेश जी अचानक ही घर चले आये। इन्होंने अपनी कम्पनी के लिए नाटक लिखना स्वीकार कर लिया है। मेरे हृदय में फिर से आशा की किरण प्रकाशित हो उठी है अशोक बाबू।' मैं सुन रहा था—किनारे से बहुत दूर, पर, अब किनारा मुझे नजदीक दिखाई दे रहा है। नाव मेरे सहारे आ लगी है। मल्लाह भी उसमें है। पर उसके पास पतवार नहीं है अशोक बाबू।

दोनों व्यक्ति श्रोता बने मनेजर महोदय की बात सुन रहे थे। प्याली की चाय को समाप्त करते-करते मनेजर महोदय ने फिर से बोलना प्रारंभ किया— नाटक कम्पनी और वेश्यालय में आजकल कोई अन्तर नहीं रह गया है अशोक बाबू! मेरा अनुभव तो अब यह स्वीकार करने में भी आपत्ति नहीं करता, कि एक नाटक कम्पनी चलाने की अपेक्षा एक वेश्यागृह चलाना कहीं अधिक आसान है। आजकल दर्शक रंगभूमि पर कलाप्रदर्शन देखना नहीं चाहते। वे चाहते हैं यौवन और सौन्दर्य का प्रदर्शन। वह यदि है तो उन्हें और किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं। यदि वह नहीं है तो और कोई चीज उन्हें सन्तुष्ट नहीं कर सकती।

पर आप कला को यौवन और सौन्दर्य से दूर क्यों समझते हैं मैनेजर साहब?

इसलिए कि वे एक दूसरे से दूर ही हैं।

फिर कला की कला की आप बात मत कीजिए मनेजर साहब। उसके प्रदर्शन के प्रश्न में जाने की आपको आवश्यकता नहीं। इंसान ने अब तक शरीर से अलग जीवन और मृत्यु को नहीं देखा। उससे भिन्न सुख और दुख को नहीं समझा। शरीर के अभाव में जीवन और मृत्यु की सुख और दुःख की कल्पना मात्र ही उसने की है। कल्पना और प्रदर्शन में बहुत बड़ा अन्तर है मनेजर साहब। रंगभूमि पर कला कल्पना का विषय नहीं, प्रदर्शन की

वस्तु है। उसे उसके शरीर, सौंदय और यौवन से अलग नहीं किया जा सकता।

"मानता हू, कि कल्पना और प्रदर्शन म अतर है पर "

'आप तो शब्दों के विश्लेषण मे पड गये, मैनेजर साहब। सास्कृतिक आवरण को छोडिये। सीधी बात पर आइये। वह पष्ठभूमि तो अपरिचित व्यक्तियों के लिए सुरक्षित रखी जानी चाहिए।

'तो सुनिये, अशोक बाबू। हृदयेशजी की भी यदि यही राय है, तो, फिर वही हो। मैं आपके और हृदयेशजी के मत से पूर्णत सहमत हूँ। मेरी तो एक लम्बे अरसे से यही राय रही है कि कला जहा प्रदर्शन से सबधित हो यौवन और सौन्दय से अलग नहीं की जा सकती बल्कि यौवन और सौन्दय का प्रदर्शन ही कला है। उनकी उपस्थिति ही कलात्मक है। जहा प्रदर्शन का प्रश्न हो वहा तो सास्कृतिक कला पर जनरुचि को प्रधानता देनी ही पडेगी

' अब तो आप बहुत स्पष्ट हो रहे हैं।

"अभी और भी अधिक स्पष्ट होता हू, अशोक बाबू। जिस कला के प्रदर्शन के लिए यौवन और सौदय की आवश्यकता होती है उसी की खोज म आज हम आपके पास आये हैं। हृदयेशजी अपनी एक कृति म ऐसी परिस्थिति लाये हैं जिसम आपकी जनरुचि के प्रतीक यौवन और सौन्दय अपनी प्राकृतिक अवस्था म जनता के सामने आयेंगे। अब हमारी सस्था भी केवल कलात्मक प्रदर्शन ही नहीं देगी, अशोक बाबू बल्कि, स्वय कला को भी प्रदर्शित किया करेगी। हम एक ऐसी रमणी की आवश्यकता है जो कलारूप मे अपने यौवन और सौदय को बिना आवरण रगभूमि पर प्रदर्शित कर सके। हृदयेश जी की राय है और उस राय का मैं भी समर्थक हू, अशोक बाबू, कि उस रमणी को बहुत थोडे अरसे म ही हम सर्वश्रेष्ठ कलाकार की ख्याति और सम्पन्नता प्राप्त कराने म समर्थ होंगे।'

नारी—निवसना—रगभूमि पर ! यही तो आपकी आवश्यकता है, मनेजर साहब !

'बिलकुल नहीं, अशोक बाबू ! नारी का रमणी रूप। रमणी की रमणीयता—उसका यौवन और सौन्दय ! जो दर्शनीय है वह प्रदर्शनीय भी

हाना चाहिए। जो चित्रकार म पर्दे पर आय उन नाटयकार की रगभूमि पर आने म आपत्ति नहीं होनी चाहिए। कलाकार की दृष्टि म तो रग-तूलिका और शब्द-तूलिका म विषय भिन्न हैं भी नहीं, अशोक बाबू। ' वाणी हृदयेश की थी।

यही जनता की भी माग है अशोक बाबू ! हृदयेशजी का विश्वास है कि पूजी युग म कलाकार और प्रदर्शक दोना को ही जीवित रहने के लिए जनता के स्तर पर उतरना होगा। प्रत्येक को पूर्ण रूप से व्यापारिक बनना पडेगा। सास्कृतिक प्रदर्शन का प्रबन्ध तो सरकार अथवा चन्दे से चलनेवाली सस्थाए ही इस युग म कर सकती है। जन स्तर से दूर जनरुचि की उपेक्षा का साहस एक व्यापारिक सस्था म नहीं हो सकता अशोक बाबू।

' मुझे क्या करना होगा ?

प्रत्येक चित्रकार अपनी कला के विकास के लिए सजीव प्रतिमाओ पर आश्रित रहता ही है अशोक बाबू ! बहुत सम्भव यही है कि एक उच्च कोटि के चित्रकार का अनेक सजीव, सुन्दर प्रतिमाओ से सुपरिचय व सपर्क हो। इसी आशा से आपके पास आए हैं जिससे आपकी सहायता से किसी सुयोग्य रमणी से अपने उद्देश्य की दृष्टि से सम्बन्ध स्थापित कर सकें।

"फिर ऐसी प्रतिमाओ के पते दू ?'

पता से पहले यदि उनके चित्र प्राप्त हो सकते।'

यह भी सभव है।

इतना कह अशोक अपने स्थान से तुरन्त उठ खडा हुआ। थोडी ही दूर रखी हुई एक मेज के घर से उसने एक चित्र पुस्तिका निकाली और उसे परीक्षाथ अपने आगन्तुक मित्रो के आगे रख दिया। दोनो आगन्तुक व्यक्ति पास पास बैठ उसे ध्यान से देखने लगे। पुस्तिका अब समाप्ति पर आई तो अशोक बोला— कुछ लडकियो के चित्र आप चित्रशाला की दीवारो पर भी देख सकते है।

आगन्तुक चित्र-पुस्तिका समाप्त कर अशोक के पीछे पीछे चित्रशाला के अन्य चित्र देखने लगे। थोडी देर के बाद एक चित्र को देखते देखते ही मनेजर महोदय ने प्रश्न किया— इनम से तयार कौन कौन हो जाएगी ?

इसका उत्तर तो वे ही द सकती हैं मनेजर साहब।

"आपकी दृष्टि से ?'

मेरी दृष्टि तो वहा तक पहुचती नही।"

"इनसे आपके यहा भी मुलाकात हो सकती है ?"

"यदि आप ऐसा पसद करें।'

'कब तक ?'

"यदि आज्ञा दें तो कुछ एक को तो फोन अभी कर दू। समय निश्चित हो जाएगा।'

चित्र देखते व परस्पर म बातें करते-करते अब तक वे चित्रशाला के उस स्थान पर आ गये जहा अशोक थोडी देर पहले अपना नया चित्र पूण कर रहा था। यहा पहुचते ही दोनो आगन्तुक युवतियों की आखें कलाकार की नई कृति पर आरोपित हो गई। इस दृष्टि आरोपण के क्षण भर बाद हो दोनो आगन्तुको ने परस्पर एक-दूसरे की आखो म अपनी अथ भरी दृष्टि से देखा। हृदयश न अशोक का ध्यान आकर्पित करते हुए पूछा—

"यह चित्र, अशोक बाबू ?

"सच्ची रचना है, हृदयशजी।'

"कल्पना है ?

'नही, जीवन।

हमारा सम्बध सभव हो सकता है ?"

'असम्भव नही है।"

"इन्हे भी बुलाया जा सकता है ?"

'अवश्य।

'कब ?

'जब भी आप आज्ञा करें।'

आगन्तुको की दृष्टि पुन परस्पर मिली। क्षणएक के विराम के बाद हृदयश के मुह से शब्द निकले—

जिस मूर्ति के सहारे ऐसी कला सम्भव है वह स्वय न जाने कितनी कलात्मक होगी। यह वह चित्र है, मनेजर साहब, जिसकी नायिका की सहयोग प्राप्ति पर आप और हम अपने भविष्य के स्वप्न को सफल बना सकते है। मुझे पसन्द है अशोक बाबू! मुझे अपनी पसन्द पर पूर्ण

विश्वास है मनेजर साहब ! आप किसी भी मूल्य पर इस नायिका का सह योग प्राप्त करने का प्रयत्न कीजिए। समय ही बतायेगा कि मेरी पसन्द की सामग्री से मैं क्या प्राप्त कर सकने में समर्थ हूं। अभिनय जगत में एक नया जीवन चचल कर उठगा मनेजर साहब।

और यह कहते सुनते वे सब अपने बठने के पूर्व स्थान पर आ पहुचे। अभी यहा आकर बैठे उन्हें एक क्षण भी नही बीता था कि चित्र-शाला की शान्ति धुन एवं सगीतमय स्वर से आन्दोलित हो उठी। दूर से ही किसी ने पुकारा था—

'अशोक बाबू।

स्वर नारी का था। सबका ध्यान उसकी ओर आकर्षित हो गया। पुन शब्द सुनाई दिये— एक मिनट के लिए क्षमा करें। पुकारने वाली वही दूर अपने स्थान पर यथावत खडी रही।

'यदि आपत्ति न हो तो यहीं तशरीफ ले आइये। उत्तर अशोक की ओर से था। साथ ही उसके चेहरे पर कुछ स्मित रेखायें प्रहसित हो उठीं। उसने सुना— कोई विशेष काम नही है अशोक बाबू ! बस एक मिनट।

अब तक अपने पूर्व स्थान से चलकर वह कुछ आगे बढ आई थी। आगन्तुकों ने देखा कि रमणी के मुख पर मुसकान की कुछ चचल रेखायें खेल गई हैं। उसकी दन्त-पक्ति को अपनी समस्त आभा के साथ चित्रशाला के विशेष प्रकाश में उन्होंने स्पष्ट रूप से चमकते देखा। उसके अल्प व्यव हार में नारी सुलभ लज्जा विद्यमान थी।

अशोक बाबू के इस बार के आमन्त्रण ने रमणी को इन बठे हुओं के बीच ला उपस्थित किया। उसके समीप पहुचने-पहुचते तीनों ही व्यक्ति नारी के प्रति सम्मान प्रदर्शन की दृष्टि से क्षण एक के लिए अपने-अपने स्थान पर उठ खडे हुए। रमणी ने हाथ जोड कर नवा उनके अभिवादन का उत्तर दिया। अशोक बोला—

आप हृदयेशजी हैं। बड़े अच्छे लेखक हैं। आजकल हमारे मित्र श्री किशोरीलालजी की नाटक कम्पनी को सुशोभित करते हैं। साथ ही वक्ता ने मनेजर साहब की ओर सकेत कर दिया।

'आप ता ? प्रश्न हृदयेश का था।

आप ता आप ही हैं।

'आप ता आप ही हैं अजीब उत्तर है। किसी अपरिचित के समक्ष म तो यह भाषा आ नही सकती। क्या देवी जी ? वक्तव्य मैनेजर महोदय का था। रमणी बोली—

'आपके अशोक बाबू की विनोद प्रियता इन दिनो अपनी पराकाष्ठा पर है श्रीमान जी। मेरा नाम तो पूर्णिमा है।"

'बहुत अच्छा नाम है। वाणी हृदयेश की थी। अशोक ने पूछा—

अच्छा लगा तो आपको ?

'अवश्य।'

'स्वर म सगीत जो है। इसीलिए मैं चुप रहा।

आजकल खुशामद करना बहुत सीख गए।

"औरतें खुशामद पसन्द जो हुई जा रही हैं।

"ता फिर कही अभ्यास चालू है।'

"असल बात तो यह है कि जिसके पास अभ्यास करता हू वह पूर्णिमा और अशोक के उपरोक्त वार्ता के ठीक बाद मनेजर साहब बोल पडे— 'अरे भाई! हमे भी तो आखिर किसी घाट उतारो। इतनी देर मे प्रतीक्षा आ कर रहे है।

'अधीर न होइए श्रीमान जी! यह जो कुछ खुशामद हो रही है सब आपके लिए ही हो रही है।

'खैर भाई! आपको फिर खडा क्यो कर रखा है ?

आप बैठिए न। आप भी। आप भी तशरीफ रखें।

मैं ता आता लू। बहुत जरूरी काम है। आपसे एक मिनट।

आपके एक मिनट वाला काम ता मैं समझ गया। उसे तो हुआ ही समझिए। मैं अभी चाय हाजिर करता हू। क्यो मनेजर साहब।" और इतना कह उसने अपने पास ही के एक बिजली के बटन को दबा दिया। मनेजर साहब भी साथ ही तुरत बोल पडे— अवश्य, अवश्य, अशोक बाबू! चाय के लिए कोई समय असमय नही होना। दृष्टि से दूर कोने मे खडा सेवक तुरन्त आ उपस्थित हुआ। बोला— जी।

चाय ले आओ। सेवक के चले जाने पर हृदयेश ने परिचय का प्रसंग चलाते हुए पूछा— हा तो फिर आप ? '

'अभी भी नही पहिचाना ? हद हो गई। आप ही हमारी मंच स्टाना हैं।

आह ! यही तो मैं देख रहा था।

अब तो मैं भी देख रहा हू हृदयेश जी। और साथ ही एक मुक्त हंसी मनजर साहब के मुह से बाहर हो गई।

सबके प्रकृतिस्थ हो जाने के बाद अशोक ने पूर्णिमा का सम्बोधन करते हुए कहा— मेरे मेहरबान मित्र बाबू श्री किशोरीलाल जी को अपनी नाटक कम्पनी के लिए एक नायिका की आवश्यकता है। हृदयेश जी की पसन्द आप पर गई है। अवसर है पूर्णिमा। बहुत बड़ा स्वर्ण अवसर। जीवन में अवसर बार-बार नही आते। मेरी बात पर गम्भीरतापूर्वक विचार करो। यदि कोई विशेष आपत्ति न हो तो तुम्हे इनके आमन्त्रण को स्वीकार कर लेना चाहिए।

' मैं—नायिका—नाटक कम्पनी में। मजाक के लिए आज और कोई मिला नही क्या अशोक बाबू ?

मजाक नही पूर्णिमा ! मैं अपनी बात में गम्भीर हू। यह सब अपनी ओर से मैं कुछ भी नही कह रहा हू।

अशोक बाबू ने तो हमारे ही प्रस्ताव को हमारी इच्छा से आपके सामने रखा है देवी जी। यदि आप स्वीकार कर तो हम बड़ा धनी होगी।

आप भी अशोक बाबू की बातों में आ गये मालूम होते हैं हृदयेश जी। इनका तो विनोदी स्वभाव है। मैंने कभी यही काम नहीं किया है। नाटक कम्पनी की नायिका तो एक बहुत बड़ी हस्ती होती है।

जिस चीज की हम आवश्यकता है वह आपमें है देवी जी। बड़ा हस्ती क्या होती है कैसे बनती है यह सब हमे मालूम है। हमारे आंख और मस्तिष्क दोनो है देवी जी ! हम उनसे देख भी सकते हैं और समझ भी सकते हैं।

पर मैंने कभी यही काम नहीं किया है हृदयेश जी ! मैं कलाकार

हू भी नहा जा आपक काम आ सक् ।

'इसकी चिन्ता ता हम करेंग, दवी जी ! कौन अभिनता और अभि नत्री कलाकार हैं दूसर के लिखे शब्दों को दोहराने वाले कहीं कलाकार हाते ह दवी जी। यह एक भ्रम ह माग्हीन मिथ्या प्रचार है। विवेकशील व्यक्ति का इस पर कभी ध्यान हा नहीं दना चाहिये।'

हृदयेश जा।

'एक बार फिर कहना हू दवी जी कि दूसरे के लिखे शब्दों को बोलन वाल कलाकार नहीं हान। व ता नतक की प्रतिमाए है जा उसक सकेत पर गाती हैं और सकेतपर हा चुप हा जाती है। क्षण एक विरम कर वह बाना—'कलाकार स्वतत्र परतन्त्र कभी नहीं होता दवी जी।'

'हृदयेश जी ! आपन मर हृदय म एक नई आशा को जन्म दिया पर साथ ही उसक सुनहर स्वप्नो का नष्ट कर दिया।

क्षण एक विरम कर वह बाना—

दूसरे के लिख शब्दों का बोलने वाल कलाकार नहीं होते। वे ता दीपक की प्रतिमाए है जा एक सकेत पर बोलता और दूसरे पर चुप हा जाती हैं। आज न जाने कितने व्यक्तिया का मर सामने आपन सारहीन कर दिया। यदि प्रतिमा ही रहना ह ता क्या करूगी अभिनेत्री बनक हृदयेश जा ?

जीवन की आवश्यकताओ का प्रश्न है दवी जी। पजी युग है। आशा और अरमाना की पूर्ति का सवाल है। अवसर उपस्थित है आप हमारे प्रस्ताव का गम्भीरतापूवक सोचें। इतने म नौकर चाय लेकर आ उपस्थित हुआ। मनेजर साहब प्याल को पूण करने लग। पूर्णिमा बोली—'एक क्षण के लिए मान लीजिए कि मैं आपकी आना स्वीकार कर लेती हू फिर क्या होगा ?'

अभावो म अवकाश मिलेगा। आत्म हीनता दूर हागी। ख्याति मिलेगा सम्मान मिलेगा धन मिलेगा। आशा और अरमाना की पूर्ति क अवसर प्राप्त होगे, साध्या की सिद्धि के साधन हथेली म रहेंगे।

और मुझे करना क्या होगा ?

'वही जो अब करना हाना है।

'आप यह बताइए न कि मुझे क्या करना होगा ?'

"वही बता रहा हू कुमारी जी। क्षमा कीजिएगा, अशोक बाबू। नारी के लिए हर पुरुष एक जसा है। पुरुष के लिए भी नारी नारी मे अन्तर नहीं। चित्रकार अशोक की आखें कुमारी पूर्णिमा मे जो रमणीयता देखती है वही लेखक हृदयेश देखेगा। उसी रमणीयता का दर्शन के लिए दोनो के हृदय आतुर होंगे। कुमारी पूर्णिमा जब तक अपने को चित्रकार की प्रतिमा अथवा लेखक की नायिका समझती है वह परतन्त्र है, दास है। जिस दिन इस बधन को तोड—व्यक्ति विशेष के मोह का परित्याग कर वह स्वतन्त्र बनेगी उसी दिन उसे अपनी सवशक्ति का पता चलेगा। नारी की रमणीयता ही कला है। उसी का प्रदर्शन हम करेंगे। पर वह सम्भव तभी है जब रमणी पुरुष-पुरुष में भेद न करे। आख आख म अन्तर न देखे।

कुछ एक क्षण के लिए चित्रशाला मे किसी विचारपूर्ण निणय के पूव की शान्ति ने अपना आधिपत्य सा जमा लिया। सभी उपस्थित व्यक्तियो के चेहरो पर अथ-पूण मौन हास्य की छाया नाचने लगी। परस्पर म सभी एक दूसरे की भाव भाषा पढने का प्रयत्न करने लगे। आखिर पूर्णिमा ने ही शाति भग की—बोली—

"अच्छा, अभी तो आज्ञा लू ?" साथ ही वह अपने स्थान स उठ खडी हुई।

हमारा प्रस्ताव ?'

"कल के लिए स्थगित।

'सुबह ?"

"सुबह नहीं तो शाम।

"मैं आऊ ?'

'यदि मेरी ओर से कोई सूचना न मिले तो।"

'फिर सूचना न भेजने की कृपा ही कीजिएगा।

"आपके पास पहुचने का बहाना ता बना रहना चाहिए।' वाणी मैनेजर महोदय की थी।

पूर्णिमा बोली—'जसी आज्ञा! अशोक बाबू! एक मिनट!'

'हाजिर!' साथ ही अशोक ने एक बद लिफाफा उसके आगे बढा

होठों की मन्द मुस्कराहट ने शीघ्र ही स्मित हास्य का रूप ले लिया। वह अपने ही सौंदर्य को अपनी ही आंखों में कुछ क्षण देखती रही। मेज पर पास ही सिगरेट की डिबिया रखी थी। उसने एक सिगरेट जलाकर मुंह में रख लिया और उसके धूम को किसी विचार में अपनी प्रतिछाया पर फेंकने लगी। एक अर्थभरी दृष्टि में उसने अपनी प्रतिरूपा को आंखों में देखा। फिर शीशे के पास सरककर पूछा—

'क्या पूर्णिमा? पसन्द है? इसमें अधिक और कुछ नहीं करना पड़ेगा। अवसर है। अवसर बार बार नहीं आते। जो बनना चाहती थी वही है। 'स्टेज' 'स्क्रीन' में विशेष कोई अन्तर नहीं। चढ़ने से ही शिखर पर पहुंचता है। बोल! हां कह दे। आपत्ति ही क्या है। सभी को ऐसा करना पड़ता है। लेखक असत्य नहीं कहता था। नारी की रमणीयता ही उसकी कला है। उसके रमणी रूप का प्रदर्शन ही उसका अभिनय है। भय किसका? क्या? अब भी इससे भिन्न क्या करती है? लोग क्या कहेंगे? अब भी लोग क्या नहीं कहते। ये कुछ नहीं प्रश्न ही गलत है। लेखक ठीक कहता था—जीवन की आवश्यकताओं का प्रश्न है। पूंजी युग है। आशा और अरमानों की पूर्ति का सवाल है। अभावों में अवकाश मिलेगा। आत्महीनता दूर होगी। ख्याति मिलेगी सम्मान मिलेगा धन मिलेगा। आशा और अरमानों की पूर्ति के अवसर प्राप्त होंगे। साध्य की सिद्धि के साधन हथेली में रहेंगे। इन सबके पीछे रहस्य क्या है? वही जो लेखक ने कहा था—नारी की रमणीयता—उस रमणीयता का प्रयोग।

इतने में ही कमरे के बाहर किसी के पांवों की आहट सुनाई दी। पूर्णिमा ने बटन दबाकर कमरे में अंधेरा कर लिया। उसने सुना उसके कमरे के पास वाले पड़ोसी सिनेमा देखकर आये थे और किसी नर्तकी की अदाओं की प्रशंसा कर रहे थे। उसने मेज पर की बत्ती जला ली और मुंह पर हाथ रखकर हंसने लगी। थोड़ी ही देर में बाहर खड़े पड़ोसियों का बातचीत बन्द हो गया। शीशे के पास मन्द में आकर उसने कहा—

'बात एक ही है पगली! सिर्फ समझ समझ है। और इतना फर्क कि भरकर आकर आये एक बार और हम परी।

आज किसी के कथन ने नारी में रमणीयत्व को जाग्रत कर लिया था।

रमणी की सजगता म इस समय उफान था। उस सजगता म आशा, अर मान मपने सागर की लहरों की तरह नाच रहे थे। उसके अंग प्रत्यंग म चचल लहरों की सी गति थी। रमणी ने कमनीय अंगो को अनेक बार स्पर्श कर करके उसने देखा और फिर एक मतवाली प्रमिका की तरह अपने ही प्रतिबिम्बित होठो का चुम्बन कर वह मुस्कराती हुई मेज पर ही शीश क सहारे बैठ गई।

कोने म एक छोटी मेज पर एक प्लेट म उसका खाना रखा हुआ था। पास ही पानी की सुराही पडी थी। उन पर दृष्टि जाते ही उसकी मुख मुद्राओ मे परिवतन-सा आ गया। वह कुछ क्षण एकटक उनकी ओर देखती रही और देखते देखते ही शिथिल हो गई। उसने उठकर जमीन पर पडे अपने पेटीकोट को उठाकर पहन लिया और गले मे एक ढीला-सा वस्त्र डाल कोने म रखी मेज के सहारे आ खडी हुई।

अब तक कमरे की खिडकी बन्द थी। उसने उसे खोल लिया। मेज को पलग के सहारे सरकाकर वह खाने के लिए बैठ गई। वही चार चपातिया और सूखी सब्जी एक प्लेट म रखे थे। भूख थी इसीलिए शायद खाना आवश्यक था। जो कुछ भी था उसने जल्दी जल्दी खाकर पानी पी लिया। खुली खिडकी के पास आकर खडी हुई तो दूर तक रात्रि के इस मध्य प्रहर म भी पूजी युग की आभा को उसने सजीव पाया। जहा तक आखे देख सकती थी उसने बिजली की बत्तिया को जगमगाते देखा। सिनेमा नाटक घर कारखाने अपने को जीवित रखने के लिए काम कर रहे थे। मजदूर जग रहा था जिससे मालिक सो सके।

वह अपने कमरे की खिडकी के सहारे खडी देखती रही। प्रकाशित सडक पर नीचे रिक्शे चल रहे थे, गाडिया चल रही थी, मोटरें दौड रही थी और साथ ही सहारे फुटपाथ पर अनेका स्त्री-पुरुष बच्चे मान की चिता म लोट पोट कर रहे थे। उनके ऊपर सडक के दोनो ओर गगनचुम्बी अट्टालिकाए, कोठिया, महल खडे थे। किसके लिए क्या था कितना था उससे छिपा हुआ नही था। युग ही ऐसा था जिसम पूजी को जिन्दा रखने के लिए इन्सान मर रहा था।—

यहा इस तरह देखते-देखते अनेको विचारो की रेखाए उसके चेहरे पर

आ गई। एक हताश व्यक्ति के निश्चय की आखिरी छाया ने उसे खिड़की के इस स्थान को छोड़ने के लिए विवश किया। वह खिड़की बन्द कर पुन शीशे के सामने आ खड़ी हुई। इस समय उसका चेहरा गम्भीर था। मुख पर अपने निश्चय की अमिट छाप थी। होठ बन्द थे। उसने अपनी आँखों में कुछ क्षण के लिए अविरत रूप से देखा। फिर बोली— अभाव और हीनता से छुटकारा पाने के लिए जरूरी है कि युग की धारा के साथ युग के स्तर पर चला जाए।

साथ ही उसके गम्भीर चेहरे पर पुन एक स्मित हास्य क्षण उगा। उसमें खुशी की बजाए विलास की मादकता अधिक थी। उसने पुन एक एक करके अपने सारे वसन उतार दिए और अपने अंग प्रत्यंगों को एक नव यौवना के अभिमान से देखने लगी। उसने अपने अनेक नारी विशेष अंगों को सहला-सहलाकर उभार उभारकर स्पर्श कर-करके देखा और विभिन्न कोणों में शीशे में उनका सौंदर्य सौष्ठव गोलाई आदि परखने लगी। आज इस तरह एकान्त में अपने आपको देखने में उसे आनन्द आ रहा था। सम्भवत पहले कभी भी वह अपनी यौवनमयी सौंदर्य सम्पत्ति के प्रति इस तरह इतनी अधिक मात्रा में सजग नहीं हुई थी। आज एकाएक किसी के प्रखर संवेग ने प्रेरणा बन अपने प्रति अपनी शक्ति के प्रति— अपने सौन्दर्य और यौवन के प्रति उसे सक्रिय रूप से सचेत कर दिया था। नारी में इस समय अपने रमणी रूप की प्रधानता थी। पूंजी युग के समस्त वैभव और ऐश्वर्य आज उसे अपने अंग प्रत्यंगों में सरल साध्य दिखाई दिए। दर्पण के पास सरककर उसने कहा— पूर्णिमा! नारी का रमणी रूप ही उसका वास्तविक रूप है। यौवन और सौन्दर्य ही उसकी वास्तविक सम्पत्ति है। यदि संसार के वैभव और ऐश्वर्य का शरीर में भोग चाहती है तो अपना शरीर श्री को सुरक्षित रख। यौवन और सौन्दर्य से भिन्न परिस्थिति ही नारी की दासता है। रमणी से भिन्न नारी ही दास है उससे भिन्न वह सिर्फ गणिका है।

और यह कहते-कहते उसने अपनी वेणी को मुक्त कर बालों को अपने कंधों पर इस तरह सहरा दिया जिससे कुछ बाल स्तनों के उरोजों पर आ गिरे और कुछ ने उसकी मुखाकृति को घेर लिया। वह अब भी अपने ही

को देख रही थी। इस समय उसकी आभा चतुर्दशी के उस शरतचन्द्र की सी थी जो काले बादलों से घिरे आकाश प्रांगण में अपने सौन्दर्य की भाकी भर दिखाने आ प्रविष्ट हुआ हो।

वेणी के मुक्त हो जाने पर अब सर्वप्रथम उसका ध्यान अपने बालों की ओर गया। उसने देखा कि वे आवश्यक रूप से लम्बे, काले और चिकने थे। बाह्य प्रसाधनों का अभाव रहते हुए भी उनमें अपनी प्राकृतिक चमक व चिकनापन मौजूद था। इनके यथावत् रहते उसे किसी भी सुकेशी से ईर्ष्या करने की आवश्यकता नहीं थी। हथेली में लेकर उसने उन्हें एक बार चूम लिया।—उसने अपनी वेणी बांध ली। लम्बी गर्दन पर गोल सुन्दर चेहरा उभर-सा आया। उन्नत मस्तक था। पतली भौंए कमानी का बांकापन लिए हुए थी। पलकों में राए लम्बे, खड़े और खुले हुए सुशोभित थे।—आंखों में चमक थी। उनकी विशालता में हल्की नीलिमा प्रमुख रूप से भाक रही थी। सजीव काली पुतलियों में नैसर्गिक मद छलक रहा था। उसने क्षण एक के लिए अपनी आंखों में देखा और मुस्करा दिया।

अब उसका ध्यान नासिका और होंठों की ओर गया। वे भी उसके अनुरूप ही अपनी विशिष्टता लिए हुए थे। प्रकृति ने उसकी नासिका के अग्र भाग और होंठों की कोरनी में विशेष रूप से अपनी सौन्दर्य विशेषज्ञता का परिचय दिया था। उसके लालिमा युक्त कला पूर्ण होंठ अपनी मुस्कराहट में एक बार और खुल पड़े और उनके नीचे छिपी दंत-पंक्ति मुक्ता आभा की तरह सौगुने प्रभाव के साथ चमक उठी।

अपनी आंखों से अपने को अर्थपूर्ण दृष्टि से देखते हुए उसने कहा—पूर्णिमा! विश्वास कर, चित्रकार अशोक असत्य नहीं कहता था कि तुम्हारे रहते अपनी कला के लिए उसे अन्य किसी प्रतिमा की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे अंग प्रत्यंग में उसके लिए कला है।

इतना वह कह कमरे के बीच में आ गई और उसने देखा कि उसके समस्त शरीर की धवलिमा में कान्ति प्रतिक्षण नूतन विकास पा रही है। उसने कुछ एक क्षण तो पुनः अपने विभिन्न अंगों को सहलाया उभराया स्पर्श किया और फिर शीशे में अपनी हथेली के अग्र भाग का चुम्बन लेते हुए वह पलंग पर लेट गई।

उसने भविष्य देखा। उसका जीवन एक नए पथ पर अग्रसर होने वाला था। वह समझती थी कि बात एक ही है, सिर्फ परिस्थितियां भिन्न भिन्न हैं। चित्रकार की प्रतिमा की जीवन भावी इस मंजिल पर उसके लिए एक अतीत की वस्तु हो गई। नई परिस्थिति में उसने आशा देखी आकर्षण देखा अनुभव किया। उसके मस्तिष्क पट पर भविष्य के सजीव चित्र आने जाने लगे। रात्रि बहुत बीत चुकी थी मगर उसकी विचार धारा का वेग यथावत चालू था। उसने एक-दो बार यह अनुभव भी किया कि उसकी आंखें पलंग पर लेटे रहते बन्द हो गई थी। फिर भी अपने मस्तिष्क पर चित्रित घटनाओं की सजीवता में उसे कोई अन्तर मालूम नहीं दिया।

धीरे धीरे वह अपनी विचार धारा में बह गई। अब उसने जो भी देखा उसमें स्थान और काल का अधिक महत्त्व नहीं था। दृश्य सजीव अवश्य थे पर साथ ही बहुत अधिक परिवर्तन शील भी थे। जीवन की उस आने वाली कल्पना में उसने देखा कि उसका आवास अब एक सुन्दर सजे हुए बंगले में है। मुख्य द्वार पर प्रहरी खड़े हैं। बंगले के चारों ओर सुन्दर बगीचा है जिसमें रंग बिरंगे सुगन्धमय फूल खिल रहे हैं। विशाल प्रांगणों में रंग फव्वारों ने बाग की सुन्दरता को और भी आकर्षक बना दिया है। अनेकों जगह ऐसे छोटे मोटे फूल पत्तों से छाये सघन कुंज हैं जिनके नीचे बैठकर मानव अपने अशान्त मन को शान्ति और शान्त मन को सुख देने की आशा कर सकता है। इन कुंजों में से जो पथवीथियां बगीचे के अन्य भागों में जाती हैं वे स्वच्छ सुन्दर और सुवासित हैं। जिधर भी वह इन पथवीथियों पर निकली है दास दासियां उसके सम्मान में उठकर क्षण एक के लिए अपने हाथ का काम छोड़कर उसके आगे नतमस्तक हो जाते हैं। जिससे वह बोल लेती है वह अपने को धन्य समझती है। जिसके सामने वह मुस्करा देती है वह प्रसन्नता से फूला नहीं समाता।

अब उसे कहीं पैदल आना-जाना नहीं पड़ता। हर समय वह अपने को सुन्दर वस्त्रों और बहुमूल्य आभूषणों से सजे हुए पाती है। उसकी नई कीमती मोटर के नम्बर लोग पहचानने लगे हैं। उसके हॉर्न की आवाज सुन सर्वत्र प्रहरी उसके प्रवेश के लिए द्वार खोल देते हैं। अब कहीं भी उसे इत्तला करा कर अन्दर जाना नहीं पड़ता। यदि कहीं वह प्रवेश पाने के लिए सन्देश

भेजती है तो आना दने वाला स्वय हाथ बाधे मामने आ खडा होना है। जहा भी वह पहुचती है उस महसूस होना है कि लोगो की आखें सिफ उसे ही देखती है लोग उसी की वाणी सुनना चाहते है और जो भी बात होती है उसी के सम्बन्ध मे होती है। जिधर स भी वह निकलती है अपनी ही प्रशसा के नारे उसके कानो म पडते हैं। जो भी उसके सम्पक म आता है अपने को गौरवान्वित समझता है। जो उसके निकट सम्पक म है उनसे लोग ईर्षा करते हैं और व स्वय अपने भाग्य पर फूले नही समाते। सष्टि म अपनी उपस्थिति म अपने ऐश्वय और आधिपत्य के अलावा और कुछ भी उसे नजर नहीं आता। शस्त्र सुसज्जित प्रहरी तक भी उसकी पहुच पर नतमस्तक हो मूर्ति बन जाते हैं और सवत्र सबका स्वागत-अभिवादन, स्वीकार करती हुई स्वेच्छा से ससार मे वह इधर उधर विचरण करती है।

जो सुविधाए, सम्मान, स्वतन्त्रता प्रभुता उसके लिए बाहर हैं वे ही बल्कि उनसे बढकर उसके लिए अपने घर पर भी मौजूद हैं। उसकी मोटर के अपने घर के पोच' म पहुचने से पहले ही सवक उसका द्वार खोलने क लिए हाजिर खडा मिलता है। ज्यो ही मोटर म निकल पारसी गलीचो म सजी अपने बगले की पेडियो पर पाव रखती चलता है उसके सामने के द्वार खुलते रहते हैं। उसके घर म, बगीचे म कोई चीज ऐसी नहीं जिसे देखने मे आखो को अरुचि हो। उसके प्रवेश करते ही उसके घर का प्रवेश द्वार बन्द हो जाता है। सामने, दायें बायें तीन गलियारे ह। सामने गलियारे स बगले क मुख्य बडे कमरे को प्रवेश है। बायी ओर के गलियारे को पार करके सीढिया है जो उसके शयन कक्ष की ओर जाती है। दायी ओर कमरे अतिथियो के लिए हैं। उसके शयन कक्ष की सीढियो की रक्षा हेतु एक विशाल काय अलसेसियन कुत्ता बधा खडा है जो उसकी अनुपस्थित मे किसी को भी उन पर पाव नही रखने देता। रात्रि म जब वह खुला रहता है किसी की शक्ति नही कि शयन कक्ष की ओर मुह करे। इन तीनो गलियारो की दीवारें पक्तिबद्ध कलापूण चित्रो स सुसज्जित है। इनके पथो के हर उपयुक्त मोड पर सुन्दर शीशे लगे हैं जिनम आगन्तुक अपनी आभा को, अपने व्यक्तित्व को, स्वय अपनी आखो देख सके। फश पर बिछे गलीचो दीवारो, तस्वीरो परदो पखो व रोशनी आदि अय सजावट म व्यवहृत वस्तुओं

रंगों में एक रसता है। आकार आकृति और रंगों की पारस्परिक अनुरूपता ने महल के समस्त वातावरण में कलामय गम्भीरता को मूर्तिमान कर लिया है। अपनी कलाई गति में जब पूर्णिमा किसी भी स्थल पर विचरण करती है तो मालूम होता है कि अमर-यौवना कला ही स्वयं अपने समस्त सौन्दर्य के साथ अवतरित हुई है। अपने घर में पहुँचते ही उसे अनुभव होता है कि जहाँ भी वह खड़ी होती है बैठती है जाती है उस स्थल की शोभा सौगुना बढ़ जाती है। साथ ही अपने घर के प्रत्येक स्थल पर वह अपनी सौन्दर्य-श्री का प्रतिक्षण विकसित होता हुआ पाती है।

और उसने देखा कि एक दिन रात्रि के मध्य प्रहर में वह बाहर से आई है। उसकी मुख्य सेविका ने उसे सूचना दी कि अनेक व्यक्ति उससे मिलने के लिए आए थे और अभी अभी उसकी प्रतीक्षा करते करते वापिस लौटे हैं। पूर्णिमा ने क्षण एक के लिए सोचा और फिर उस दासी को आदेश दे वह अपनी पलंग पर लेट गई। एक अन्य दासी ने उसके हाथ का थैला लेकर व गले का शाल उतारकर यथास्थान रख दिया और वह भी आदेश पा उसकी उपस्थिति से चली गई थी। थोड़ी ही देर में पूर्णिमा ने देखा कि उसके कमरे में उसकी पलंग से सम्मानपूर्ण दूरी पर एक पुरुष खड़ा है। पूर्णिमा इस समय कुछ शान्त-सी थी। लचकदार मखमली शय्या पर उसका आवास था। कोमल रेशमी तकिये उसके अंगों को यत्र-तत्र आश्रय दे रहे थे। हल्के नीले रंग की रोशनी के कारण सारा कमरा रात्रि की गम्भीरता का वातावरण लिए हुए था। उसने पुरुष को देखा और पहचान लिया। पूछा—

अच्छे हो कुमार?

बहुत अच्छा! विशेषकर तुम्हें इस स्थिति में पाकर! तुम?

मैं भी अच्छी हूँ।'

मालूम होता है समय बदल गया है।

समय परिवर्तनशील है कुमार।

इतने बड़े स्थान में तुम अपने को अकेली अनुभव नहीं करती पूर्णिमा।

मैं अकेली कहाँ हूँ कुमार! सारा संसार तो मेरे साथ है।

तुम हँसती हो तो तुम्हारा साथ कौन देता है?'

"सारा ससार। यहा की दीवारें तक भी।'

'और रोती हो तो आसू कौन पोछता है, पूर्णिमा ?'

"कुमार !"

पूर्णिमा ! अफसोस है कि प्रभुत्व पाकर तुम जीवन के महामत्र को भूल गई। तुम्हारा जीवन अप्राकृतिक है। नारी या पुरुष कोई भी हो, जीवन की मजिल साथी के साथ ही सुख से कटती है। मैं तुम्हारी आस पर था। आज वह आशा भी टूट गई जब तुम्हारे मुह से अपने काना यह सुना कि हँसो म ससार तुम्हारे साथ है। आज दीवारो के इंट पत्थर तुम्हारे साथी हो गय और इन्सान का साथ छूट गया।

"कुमार !

"तुम्हारा क्षेत्र प्रभुत्व नही है पूर्णिमा। तुम ही हँसो और तुम ही देखो तुम ही आसू बहाओ और तुम ही पोछो नारी के लिए यह परिस्थिति अत्यन्त भयकर और दुःखपण है। तुम पूजा की पात्र हो। उसके बदले म तुमने प्रभुत्व क्यो अपना लिया, पूर्णिमा ?'

कुमार !

' तुम्हे तो ससार अपना साथी मिल गया, पूर्णिमा, परन्तु तुम्हे अपना कहने वाला कुमार आज भी अकेला है। तुम सुखी हो सुखी रहो खैर, मैं चला।"

इतना कह आगन्तुक चल पड़ा। पूर्णिमा के मुह स मानो एक चीख-सी निकल गई। उसने भयभीत हो पुकारा—'कुमार ! कुमार ! '

मगर, वह रुका नही। वह उसके पीछे दौडी। वह पडिया उतर गया था। वह भी 'कुमार', 'कुमार' पुकारती हुई उसके पीछे पडिया उतर गई। उसने देखा कि सारा बगला सूना पडा है। उसने मदद के लिए पुकारा। मगर किसी ने उसकी पुकार सुनी नही। वह और भी तेज भागी। और भी जोर से उसने पुकारा—"कुमार।'

इस बार कुमार ने पुकार सुन ली। वह ठहर गया। उसने पीछे देखा। वह दौडी हुई आई और उससे लिपट गई। उसकी आखो म भय था। सास फूल रही थी। शरीर काप रहा था। उसने उसे और भी मजबूती स पकड लिया। फिर एक भयातुर व्यक्ति की आवाज से दयकर पुकारा—

'कुमार !'

कुमार की बाह खुल गई। वह बोला— तुम आ गई पूर्णिमा। साथ ही अपने दोनो हाथों से वह उसकी पीठ को सहलाने लगा। क्षण एक विरम कर उसने कहा— मेरे लिए इतना ही काफी है पूर्णिमा।

कुछ क्षण वे दोनो एक-दूसरे के बाहुपाशों में बधे रहे। दोनो की आखें एक दूसरे को प्यार भरी दृष्टि से देखती रही। पूर्णिमा बोली—

अकेले मे मुझे भय लगता है कुमार ! तुम मेरे साथ रहो।

शरीर प्रतिक्षण साथ नही रहते, पूर्णिमा। प्रतिक्षण साथ रहने के लिए साथी की स्मृति है। किसी इच्छा अथवा कार्य के सम्पादित होने पर ही सुख की अनुभूति होती है। सपादित होने का अर्थ हुआ कि उस इच्छा अथवा कार्य की स्मृति भर शेष है। स्मृति ही सुख है पूर्णिमा। वही मानव की सुख सपत्ति है। एक कहा भी रहे अपने मिलन क्षणों को याद कर किसी भी अवस्था मे सुखी हो सकता है।

क्षमा करो कुमार। यह अनुभूति प्राप्त करने मे मैं असमर्थ हू।

भूलती हो पूर्णिमा। विश्व मे ग्रहणशीलता है। इसकी विभिन्नता मे एक रसता है। *वाटिका मे खिले फूल का सौन्दर्य और सौरभ किसी विशेष भ्रमर के लिए ही तो नही होते और उसकी खूबियां भी किसी एक व्यक्ति के लाभ अथवा भोग के लिए रक्षित नही होनी चाहिए।* मानव का ससार के साथ चलना है। जीवन मजिल मे साथ चलने वाले सभी साथी है। मजिल पर चलने वाले को चाहिए कि जहा भी जिस किसी के साथ आराम का अवसर मिले उसे ठुकराए नही। तुम्हे अकेला पाकर मैं तुम्हारे पास आया था। यदि और भी कोई तुम्हारे साथ होता तो मुझे अपना सुख प्राप्त करने मे कोई आपत्ति नही होती। यही सुख का रहस्य है पूर्णिमा। इसमे भिन्न परिस्थितियां ही मानव के दुख का कारण है। जीवन मे सुख के अवसरों को आराम के क्षणो को प्राप्त होने पर स्वतन्त्रता से उपभोग करना चाहिए।

कुमार की बात सुन पूर्णिमा ने उसे और भी अधिक मजबूती से पकड़ लिया। *उस समय ऊपर ऊपर चाद हस रहा था। तारे मुस्करा रहे थे।* वाटिका की लताए और उनपर खिले पुष्प उनके प्रणय बधन को साथी के सुख की तरह निहार रहे थे।—पूर्णिमा की मन मे छलकती

आर्खे ऊपर उठा। अतएव ध्यान से उसने कुमार की आखो म देखा। दोनो के अधरो पर मुस्कराहट खेल गई। वह उठा। वह झुका। प्रणय चुम्बन की प्रगाढता म दोनो कुछ क्षण के लिए एक हो गए। शान्त निशा की शुभ्र चान्दनी म पूर्णिमा की अर्द्धमीलित मदभरी आखें कुमार के लिए एक बहुत बडा प्रलोभन थी। अधर मुक्त हुए पर इच्छा नही मिटी। आलिंगन शिथिल होने के बदले और भी अधिक प्रगाढ हो चला। इस समय पूर्णिमा की आखें किसी तृप्ति की अनुभूति म बद थी। कुमार के मुह से पूर्णिमा शब्द का सबोधन सुन व एक बार खुली भी मगर फिर बद हो गई। कुमार ने देखा कि उनकी आखो म यौवन की मादकता छलक रही है। उसकी गरम स्वास तीव्र हो चली। अधर पुन काप उठे। कपोलो की धवलिमा मे अरुणिमा उतर आई। उसने अपने अधर उसके कपोलो पर लगा दिए।

इसके थोडी देर बाद व दोनो लता-कुजो म होते हुए एक उपवन म निकल आए जहा एक विशाल सुन्दर सरोवर था। शीतल सुरभित पवन लहरो के झकोरो से टकराती अपने समस्त यौवन के साथ खेल रही थी। व दोनो एक दूसरे का हाथ हथेली थाम उस सरोवर के तट पर आ गए। उन्होने देखा कि सरोवर म कमल खिले थे। कमलिनी के विस्तृत पत्तो पर जल बिन्दु शोभायमान थे जिनकी चमक चान्दनी के इस शुभ्र प्रकाश मे बिखरी मुक्ता आभा की भी सौन्दर्य म ललकारती थी। पवन की गति म तरगित सरोवर की जलराशि म प्रतिबिम्बित चन्द्र किरणो का नाच हो रहा था। कुमार और पूर्णिमा मुग्ध हो प्रकृति के इस स्वच्छद सौन्दर्य को देखने लगे। कुछ एक क्षणो के बाद पूर्णिमा ने पूछा—

इसस सुन्दर दृश्य की भी कल्पना हो सकती है कुमार ?

हा पूर्णिमा। वही सोच रहा हू।

प्रकृति की इस शोभा म तुम्हे अभाव मालूम होता है ?"

'हा पूर्णिमा ! सोचता हू सौन्दर्य की इस सृष्टि म मानव सम्मिलित क्या नही है।

हम है तो। मगर उसे कुमार ने सुना नहीं। वह बोला—

'मेरी सहायता करो, पूर्णिमा। इसम सुखकर घडी, शायद जीवन म फिर न आए। कृपा करो, पूर्णिमा।

वाले से कहना फौरन भेज दे या तुम ही ले आओ। जाओ जल्दी करो बेगम साहबा को बहुत जल्दी है।

राधा सुनकर कमरे के बाहर चली गई। बाहर पहुंचकर उसके पाव मन्द पड गये। पूर्णिमा के देखने पर राधा ने उस संकेत से बाहर बुलाया। दो चार कदम और दूर ले जाकर उन्होंने कुछ बात की। पूर्णिमा के वापिस लौटने पर अस्मत ने उसे फिर कहा—

तुम्हारे ये तकल्लुफ मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं।

मुझे तो पीनी है। अभी तम्हारे सामने ही उठी हू। और यह तो मुझे भी समझना ही चाहिए कि जो बडी बडी होटलो मे बडी बडी दावतें खाये उसे ऐसी वैसी साधारण होटल का उतना पानी कैसे पसन्द आयगा।

तेरे मेहमान है चाहे जैसे इज्जत बिगाड। पर बात यह है कि जब भी तुम्हारे पास आती हू जिस काम के लिए आती हू उसे भूल जाती हू। तेरी कसम तेरे मे कुछ बात ही ऐसी है। अच्छा एक बात बता। उस सेठ से मिलना चाहता है ?

नहीं।

अभी अभी तो उसे याद कर रही था।

वह तो तुम्हे देखकर।

सच बता।

मैं झूठ नही कहती।

एक बात बताऊ ?

जरूर।

उसने तुम्हे देख लिया है।

तो ?

उसकी तुम्हारे मे दिलचस्पी है।

फिर ?

वह तेरे से मिलना चाहता था।

तुम्हारा मतलब ?

ऐसा ही समझ लो।

और तुमने हा भर ली ?

"भरनी पडी।'

"रहने दे। यह सब किसी और का सिखाना जा तुम्हें जानता न हा। असली बात क्या है? सुबह सुबह ही इस तरह बन ठनकर निकलने का क्या कारण है?' शायद असमत यह जानती थी कि पूर्णिमा उसका हर बात का विश्वास नही करती है और इसीलिए उस पूर्णिमा की बात पर न क्रोध आया और न आश्चर्य ही। उसने सुनकर सिर्फ मुस्करा भर दिया। फिर बोली—

'हा भरन कि इन्कार नही करेगी।

सुनने स पहिले ही?

'और नही तो क्या।

'रहने द।'

अच्छा एक बात बता। आज कल और परसा तीन दिन कही लगी हुई तो नही है?'

लगने का क्या! यह तो काम मिलने पर है।

यदि काम लगादू तो?

'और वह पसन्द न हा फिर?'

'पसन्द आगया फिर ता मजूर है?'

सोचगी।'

'फिर भी सोचेगी?,

और नही ता क्या।

तू हा क्या नही भरती है?'

'तू बताती क्या नही है?'

'अच्छा सुन। मगर इतने म होटल के नौकर के साथ राधा चाय लेकर आ गई। उनके सामान रखकर बाहर जाते ही असमत बेगम कहने लगी— आज उस सेठ बाबू के कुछ मेहमान आने वाले हैं।

अच्छा।'

'व तीन-चार दिन यहा ठहरेंगे। सुना है वे सब बडी रईस तबियत क हैं।

'फिर तो तेरी मौज बन गई।

'सुनेगी भी ?

अच्छा आगे कह।'

उनके उतरने से पहले ही यह फरमाइश है कि अकेले वे एक दिन भी नही रहेंगे।

समझ गई।

सेठ बाबू ने कहा कि आज ही दो तीन लड़कियों को ठीक कर लो।'

कितना को कर आई ?

तुम्हारा नम्बर दूसरा है।

और पहला ?

वह एक एकदम है।

और तीसरा ?

वह भी तेरी ही पसन्द की होगी।

मिलेगा क्या ?'

मिलने की बात छोड़।

असली बात को छोड़ दू ? और दिलचस्पी ही क्या है ?

वह सब मैं ठीक कर दूगा।

पहले से ही ठीक क्यो नहीं कर लेती ?

बोल ! क्या लगी ?

तू बता ! तेरा क्या भाव है ?

बता दू।

जरूर।

पचास रुपये। खाना घूमना पीना देखना वह सब अलग।'

बस ?

बाकी अपनी अपनी होशियारी है।

मेरे पास तो पूरे कपड़े भी नहीं है।

अब यहां मत बना। सारा बात बता दी है।

'झूठ नहीं कहती ?

एडवांस ले ले।

उससे क्या होगा ?

'कुछ खरीद ले। फिर उन्हीं में से किसी को किसी बड़ी कम्पनी में ले जाना और चाहे जो कुछ खरीद लाना। सच, मुझे भी बहुत-कुछ खरीदना है। सुना है, आने वाले बड़े रईस हैं।

तू भी नामों के चक्कर में आ गई ?'

'नामों का चक्कर नहीं। यह तो इत्तला है।'

'और उस पर विश्वास कर लिया ?"

विश्वास न करने की कोई वजह नहीं है। बोल जल्दी बोल। क्या दे दूं ? और साथ ही साथ की प्याली नीचे रख उसने अपना हाथ का थैला खोल लिया। बोली—"हां तो कह कितने दे दूं ?

'सच बताऊं ?'

बोल भी।

'मुझे फुरसत नहीं है।,

पूर्णिमा ! "साथ ही अस्मत के चेहरे पर आश्चर्य की रेखाएं खिंच आई। पूर्णिमा बोली—

'सच कहती हूं अस्मत बेगम। मुझे अभी बिलकुल फुरसत नहीं है। तू विश्वास नहीं करेगी। कल ही नौकरी की बात हुई है। देखती हूं किस्मत कहां तक साथ देती है।"

फिर इतनी देर मुझे खराब क्यों किया ?"

"गैरों के साथ बैठने से इन्सान खराब होता है। मैं तो तुम्हारी अपनी हूं।

तेरी बात का विश्वास नहीं होता। अच्छा, एक बार और पूछती हूं। बोल, क्या कहती है ?'

तेरी कसम ! बिलकुल समय नहीं है।'

फिर मेरा कसूर न निकालना।'

'और अधिक शर्मिन्दा न कर। तेरी कसम। झूठ नहीं कहूंगी।'

'अच्छा और किसी को बता।'

'तू किसे नहीं जानती ?'

"फिर भी।'

३

बाबू किशोरीलाल के प्रस्ताव की स्वीकृति व उनके स्वीकृति-पत्र पर हस्ताक्षर करने के दूसरे ही दिन पूर्णिमा के हाथ में एक हजार रुपये की रकम आ गई। साथ ही मैनेजर महोदय उसे अपने साथ ले जाकर अनेकों साड़ियां, गहने व बहुत सी अन्य आवश्यक अनावश्यक वस्तुएं दिलवा लाए। पूर्णिमा को उन्होंने पहले ही बता दिया था कि उसके निवास के लिए उन्होंने गंगा तट के पड़ोस में पूर्ण प्रबन्ध कर दिया है। राधा ने पूर्णिमा के साथ रहना और नौकरी करना स्वीकार कर लिया था। उसके लिए अब यह आज्ञा थी कि कमरे का सारा सामान ठीक कर सबको सबका हिसाब चुका बहुत शीघ्र कम्पनी की कार में नये निवास-स्थान पर जाने के लिए तैयार हो जाय। उसके काम में सहायता देने के लिए मैनेजर महोदय अपने साथ ही आदमी ले आये थे जो उन्होंने पूर्णिमा के साथ बाहर जाने से पहले राधा के पास ही छोड़ दिये। पूर्णिमा मैनेजर महोदय के साथ अपने नये आवास पर पहुंची उससे पहले ही उसने राधा को वहां अपनी हाजिरी में मौजूद पाया।

मैनेजर महोदय की सूझ व प्रबन्ध में कोई कसर नहीं रह सकती थी। कार से उतरकर बंगले में प्रवेश करने के साथ ही 'ड्राइवर' व एक अन्य व्यक्ति ने साथ का सामान राधा की सुपुर्दगी में दे दिया। राधा को विभिन्न कमरे खोलने का आदेश दे वे पूर्णिमा का मकान और उसकी व्यवस्था दिखाने लगे। सोने के लिए पलंग, बैठने के लिए सोफे पढ़ने के लिए कुर्सी मेज यथास्थान पर्याप्त मात्रा में सुशोभित थे। वस्त्रादि रखने के लिए एक कोने में साफ सुथरी बड़ी बड़ी आलमारियां थीं और उसी जगह एक और नवीनतम प्रसाधनों से युक्त एक शृंगार-दर्शनी रखी थी। पूर्णिमा ने अपने निवास में रहने खाने, उठने, बैठने पढ़ने मिलने, स्नान करने आदि के लिए अलग अलग पूर्ण व्यवस्था पाई। मेहमानों और नौकरों

आदि के लिए भी इस मकान म पयक रूप से समुचित प्रबन्ध था। स्नान, सोने और मिलन क कमरो के फश गलीचा से ढके थे। जिन कमरो मे गलीचे नहीं थ उनम सुदर मोटी दरियां उनके आगना क अनुकूल बिछी हुई थी। बाबू किशोरीलाल अपनी व्यवस्था दिखाते दिखाते पूर्णिमा का बरामदे म ले गए। यहाँ काष्ठ के एक सुदर आधार पर एक टेलीफान रखा था। उन्होंने नम्बर मिलाए और उठाकर बात करने लगे। पूर्णिमा सुन्‍-भम भने लगी। मनेजर महादय क चेहरे पर हसी थी और व पूर्णिमा स दृष्टि मिलाए ही अय व्यक्ति से बात कर रह थ। पूर्णिमा ने सुना—

"हला कौन साहब हैं ?'

"अच्छा ! आप हैं। मुबारिक हा। जी, हा ! नय मकान से ही बोल रहा हू। आप भी यहीं हैं। और कहा ? यही—मरी बगल म। बात कराने ? मुझे मुबारिक हो ? बहुत खूब ! शुक्रिया। आ भी रहे हो या नहीं ? हम इतजार कर रह हैं। मैं अपनी ओर म ही नहीं कहता। मकान मालिका की भी ख्वाहिश है। शुक्रिया अदा कह ? कर दिया। हा, हा। उन्हान मान भी लिया। अब तशरीफ ले आइये। अधिक देरी न हो।'

मैनेजर महादय न टेलीफान यथास्थान रख दिया। पूर्णिमा वाना का पूणरूप से समझ गई था फिर भी व्यक्ति की परिचय प्राप्ति के लिए प्रश्न किया—' कौन साहब थे ?

हमार हृदयनजी।'

आ रह हैं ना ?

अवश्य। आज हमन तय किया था कि यही चाय पीयेंगे। उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था कि इतनी जल्दी मैं यह सब प्रबन्ध कर दूगा।

' मैं ता सोच ही नहीं सकती थी। आपका बडा कष्ट हुआ।

' कष्ट बिलकुल नहा। यही ता मेरी खुशी है।

इतना कह पूर्णिमा की पीठ थपथपाते वे उसे लेकर स्नान के कमर म पहुच गए। एक व्यक्ति पहले से ही इनकी सेवा मे वहा मौजद था। इनके प्रवेश करते ही उसने पर्दे खीच दिए। खिडकियां पहले से ही बन्द था।

उन पर रखे पर्दों की अनुरूपता दीवारों और फर्श पर बिछे कालीन से शोभा और रंग में मेल खाती थी। आगन्तुका के मेज के समीप पहुंचते ही सेवक ने बटन दबाकर उस पर लटकते हुए प्रकाश पुंज को प्रकाशित कर दिया और बत्तियां बुझा दीं। गालावार सुनहरे प्रकाश में मेज पर बिछे मोटे रेशमी वस्त्र की धवलिमा पर सजी सुराहियां, ग्लास, प्लेटें, प्याले, चमच आदि अपने समस्त सौन्दर्य के साथ चमक उठे। सेवक मैनेजर महोदय के पास आकर उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा में खड़ा हो गया। वे बोले—

"हृदयेशजी अभी आ रहे होंगे। उन्हें यहां भेजकर फौरन चाय ले आना।"

आदेश समझ सेवक ने उसी क्षण कमरा छोड़ दिया और वह उपयुक्त स्थान पर इन्तजार में खड़ा हो गया। मैनेजर महोदय बोले—

"यह मेरा और मेरी कम्पनी की शान के खिलाफ था कि हमारी मुख्य नायिका किसी ऐसी वैसी साधारण जगह में ठहरे। हम आज ही से अपनी तैयारियों में जुट गए हैं। थोड़े ही समय में आप भी देखेंगी कि हम सब कहां-से-कहां पहुंचे हैं। देश भर में तहलका मचा देंगे। आज ही से हमारा प्रकाशन कार्यक्रम प्रारम्भ है। साल भर ही हुआ है कि मेरी पुरानी कम्पनी बन्द हुई थी। दुनिया समझने लगी कि किशोरीलाल मर गया। कल परसों में ही उन्हें मालूम होगा कि मैं अभी मरा नहीं जीवित हूं। सच पूछो तो आपकी एक हां ने मुझे जीवन दिया। मेरी कम्पनी बन्द होने का कारण ही वास्तव में यह था कि आप-जैसी कोई चीज मुझे मिली नहीं।"

"न जाने आप मुझे कहां चढ़ाकर गिराना चाहते हैं। अभी तो मेरी जांच भी नहीं हुई।"

"यह आप नहीं जानतीं। आंखों ने देखा, कानों ने सुना, बुद्धि ने परखा, हृदय ने ग्रहण कर ली। इससे अधिक और जांच क्या होगी। वर्षों का अनुभव है। इतना आसानी से धोखा नहीं खाता। आप ही बताइये धोखा देंगी?"

मैनेजर महोदय को प्रश्न के साथ मुस्कराते देख पूर्णिमा भी मुस्करा उठी। मैनेजर महोदय बोले—

"जमाने की नब्ज को समझते हैं। रात भर में हो चाहे जितना अदि

न कलाकार बनाने की कला का रहस्य हम मालूम है। जिस पर हमने र रंग दी, जिसे हमने स्पर्श कर दिया उसे ही दिन निकलते दुनिया तारा कहने लगी। देश के कितने ही तारे तारिकाओं पर हमारा एहसान। इस बार की तो बात ही छोड़िये। सौभाग्य से सब ठीक चल रहा है। प मिल गई। हृदयदाजी मिल गए। मैं हू ही। क्या सुंदर सयोग मिला। क्या खूब लिखता है हृदयदा भी। क्या कहने! वाह!''

आगाव अज है।

'बंदगी अज! तशरीफ लाइये। बडी उम्र। सचमुच आप ही की तचीत हो रही थी। क्या देवीजी ?"

'जी।'

'आप इन्हे अभी नहीं जानतीं। पावों की आहट सुना कि बस ले लिया इसी के साथ मेरा भी नाम। क्या, गुरुजी।

'ऐसा ही समझ लो, भाई। मजबूरी है। खुशामद करते हैं, कभी किसी की, कभी किसी की।"

'बहुत खूब।' साथ ही कंधे का शाल उतार वह कुर्सी पर बैठ गया।

पीछे-पीछे आज्ञा प्राप्ति के लिए सेवक ने कमरे मे प्रवेश किया। मेज से सम्मान पूर्ण दूरी पर द्वार के पास हाथ बाधे उस खड़ा देख मनेजर महोदय बोले—

"अब देरी किस बात की। जल्दी से लाओ।

देखते देखते कुछ ही क्षणों में चाय का पानी आ गया। स्वच्छ जालीदार वस्त्र मेज पर पड़ा। खाद्य वस्तुओं से पूर्ण स्थालिकाओं पर से उतारकर समेट लिये गए। हृदयश की चाय बनाते देख मनेजर महोदय बोले—

'यह तो स्त्रियों का काम है। उन्हें ही पूरा करने दो।"

"लाइये मैं बना देती हूं। साथ ही पूर्णिमा ने मुस्कराते हुए चाय के बर्तन की ओर हाथ बढ़ा दिये।

इसमे स्वाद में फर्क थोडे ही आना है।

आपने भी गजब कर डाला हृदयशजी। आपको मालूम होना चाहिए

कि इस तीन व्यक्तियों व समाज में भी ऐसे प्राणी बैठे हैं जो प्याली के प्रथम चुम्बन से ही यह बताने का दावा रखते हैं कि पेय पुरुष द्वारा प्रस्तुत है या स्त्री द्वारा ?'

"और कुछ ?'

"यदि नाज़िन करूं तो यह भी बता सकता हूं कि पेय प्रस्तुत करने वाली यौवना है या प्रौढ़ा सुन्दरी है या कोई ऐसी वैसी ?"

मनेजर महोदय की बात सुनकर पूर्णिमा की मुस्कराहट हल्की हंसी में परिणत हो गई। उसके मुंह से शब्द निकल पड़े—

'कमाल की बात करते हैं।

'क्या कहने साहब !'

"मानिए भी ! यह सब रस विज्ञान की पुस्तकों में लिखा हुआ नहीं मिलता। स्वादन क्रिया के वर्षों के अभ्यास से यह चमत्कार हासिल होता है।"

अब तक पेय प्रस्तुत हो चुका था। पूर्णिमा के बढ़ते हुए हाथ से चाय की प्याली पकड़ते हुए मनेजर महोदय बोले—

'क्या कहने इस चाय के। जनाब फरमा गए कि स्वाद में फर्क थोड़ा ही आता है। मुझे तो सचमुच हंसी आ गई। मालूम होता है श्रीमान ने अब तक एक ही स्वाद का अनुभव किया है। जितने हाथों पीजिये उतने ही स्वाद मिलेंगे। आज के इस स्वाद व रंग को तो वर्षों बाद भी बताने का दावा कर सकता हूं।

साथ ही प्याली को होठों से स्पर्श करके बोले—

क्या कहने ! यह स्वाद तो जीवन में अब तक कभी आया ही नहीं।

धन्यवाद ! साथ ही एक क्षण के लिए किशोरीलाल व पूर्णिमा की आंखें परस्पर मिल गई। दोनों के होठों पर हल्की हंसी थी। पूर्णिमा सामने पड़ी रकाबियों में से नमकीन बादाम व पिस्ते उठाकर चबाने लगी। फिर वे दोनों हृदयेश की ओर देखने लगे। क्षणिक शान्ति को भंग करते हुए किशोरीलाल ने पूछा— जनाब चुप कैसे हैं ? हृदयेश से पहले ही पूर्णिमा ने कह दिया— आपको तो चिन्तन की आदत है।

और मुझे ?

"अधिक यौवन की।

"और श्रीमतीजी को ?'

"सुनने की।" सुनकर सभी हसन लगे। स्यालिकाओं पर सजा सामान शनै शनै समाप्त होने लगा। प्याले खाली होने पर बार-बार भर जाने लगे। रिक्त पय-पात्रों को पूर्ण करने का कार्य पूर्णिमा का था। मनेजर महोदय विभिन्न स्थालिकाओं को बार बार उठा उठाकर पहले पूर्णिमा व फिर हृदयेश की मनवारें करने लगे। रमणी की उपस्थिति—बल्कि उसके यौवन व सौंदर्य से प्रेरित सौजन्य व सवादों—से सारा स्थानीय वातावरण सजीव हो उठा था। हृदयेश ने सोचा—मैनेजर महोदय अपने सौजन्य प्रदर्शन से पूर्णिमा को प्रभावित कर अपने भविष्य को सुरक्षित करना चाहते हैं पर साथ ही उन्हें यह भी महसूस हुआ कि उनके व्यवहार व बातचीत की कुशल सजीवता एक दिन के अभ्यास की चीज नहीं थी। हृदयेश ने हाथ की प्याली को अलग रख ज्यों ही अपनी पान की डिबिया पूर्णिमा के आगे बढ़ाई उसके पहले ही मैनेजर महोदय का सिगरेट का डिब्बा उसके सामने पेश हो चुका था। पूर्णिमा ने दोनों के लिए ही हाथ जोड़ दिये।

"बस ?

मेहरबानी। हृदयेश का हाथ वापिस खिंच गया। मनेजर महोदय तुरन्त वापिस हटने वालों में नहीं थे। उन्होंने एक सिगरेट डिब्बे में से निकाल कर अपने हाथ से पूर्णिमा के आगे कर दिया और बोले—

कबूल फरमाइये।

'मैंने अर्ज किया न।'

"अपने आदमियों को इस तरह इन्कार नहीं किया करते। लीजिये।

'मेहरबानी।'

'मेहरबानी है इसीलिए तो कह रहे हैं।

आप मानते नहीं, मैं पीती नहीं हूं।'

"कभी नहीं ?

'फिर हमने कौन-सा गुनाह किया है। और साथ ही दूसरे हाथ से उन्होंने फौरन अपना सिगरेट लाइटर भी जला लिया। पूर्णिमा ने सिगरेट पकड़ ली और उसे सुलगा लिया।—मैनेजर महोदय भी पीने लगे।—क्षण

लोगा।"

जी।

मेरे मालिक! आदाबअर्ज! स्वर नवागन्तुका किसी नारी का था। वह बिना सकोच सबके आगे बढ आई।

आइये मेम!'

शुक्रिया हां जनाब को।'

शुक्रिया अब तक आगन्तुका की दृष्टि पूर्णिमा पर पड चुकी थी। पाव से सर तक एक दृष्टिपात करते हुए उसने पूर्णिमा से पूछा—

आपके सहारे बैठने की इजाजत ले सकती हू ?"

'खुशी से।' पूर्णिमा एक किनारे सरक गई।

'शुक्रिया। और साथ ही वह बैठ गई। बोली—

बेअदबी के लिए माफी चाहती हू। पर यह सब हुआ कैसे ? इतने बडे-बडे प्रोग्राम बन गये और हम खबर तक नहीं।'

'ऐसी बात नहीं थी मैडम।

'बात क्या है, वह तो अब मेरी समझ में आ रही है। "

मैडम! गुस्ताखी माफ हो तो अपनी अधूरी अर्ज को पहले पूरा कर लें। हम लोग बहुत पहले से आए बैठे हैं। देरी न हो जाय इसलिए बहुतो ने अब तक चाय भी नहीं पी है। आपकी दास्तान लम्बी है शायद बहुत लम्बी। हम पहले अर्ज करने की इजाजत दे दें।'

"आप लोगों को और भी कुछ कहना है ?'

'यदि जनाब को सुनने के लिए समय हो।

'आज की बजाय यदि कल तशरीफ ला सकें।"

'कोई आपत्ति नहीं परन्तु यदि जनाब के आगे कल भी यही परेशानी रही तो हमारा आना एक तरह से

'कल तक तो हम आखिरी निश्चय पर जरूर पहुच जाना है। वक्ता में हृदयेश का था।

और तब तक जनाब अपनी परेशानियों से भी छुटकारा पा लेंगे। समुदाय में से एक कह उठा—

जरूर! आप लोग कल जरूर आयें। अच्छा अभी तो सबको

'अवश्य।'

'नई कम्पनी म अनुभव को स्थान है या नही ?''

योग्यता को स्थान है।'

ख्याति को ?

'यह हमारी बनाई हुई वस्तु है।

पुराने सम्बन्धो को ?

'अपने लिए।

किसने मना किया ? कम्पनी ही तुम्हारी है। मैं खुद तुम्हारा हू।

मैं कन्ट्रेक्ट चाहती हू।

यह व्यापार है। अपने आदमियो से मैं व्यापार नही करता।

'फिर साफ इन्कार क्या नही कर देते ?' उसने प्याला को मेज पर रख दिया।

निर्णय से पहले ही।'

मैं कब आऊ ?

जब भी इच्छा हो।

कल आऊ ?

कल आओ।

समय ?

दफ्तर का समय।

यानि ?

'दस से पाच।

'तो कुछ आशा है ?

'अवश्य।

काम बनेगा ?

बन सकता है।

गारटी नही ? चादनी ने एक बार और अपनी घडी की ओर देखा।

प्रश्न ही गलत है।'

'आजकल किस मकान म हैं ?

'उसी में।
वहां का समय ?'
जब मिल जायें।"
मिलना मत। समय देने में आपत्ति क्या है ?'
वान इस तरह कर रही हो जैसे काम से समय की कीमत अधिक
है।

नई कम्पनी खोलने वाले सब इसी तरह जवाब देते हैं।" उसने फिर एक बार अपनी घड़ी की ओर देखा। बोली—

अभी तो मैं चलती हूं। कल सुबह चाय के समय आपके स्थान पर हाजिर होऊंगी। मेरे साथ रजतपट की एक तारिका भी होगी। उस बेचारी को काम चाहिए। अच्छा, इजाजत हो।' उसने हाथ जोड़ दिए। पूर्णिमा का समर्थन करते हुए उसने कहा—

आपको भी हमारी सिफारिश करनी है। उत्तर में पूर्णिमा ने सिर्फ मुस्करा भर दिया। क्षण भर में ही चांदनी कमरे के बाहर हो गई।

कमरे के बाहर अनेक व्यक्ति और मुलाकात के लिए आए हुए खड़े थे। कुछ तो इनमें भी वे ही थे जो इजाजत हासिल करने के बाद भी यहां से हटे नहीं थे। कुछ आ आकर इनमें निरंतर शामिल होते जाते थे। मैनेजर महोदय ने एक एक व्यक्ति को मुलाकात के लिए अन्दर बुलाना प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम जिस व्यक्ति ने प्रवेश किया वह एक सुंदर और मुस्कराता-सा नवयुवक था। प्रवेश करते ही इसने एक स्मित हास्य के साथ उपस्थित वृन्द का हाथ जोड़कर अभिवादन किया। मैनेजर महोदय इस जल्दी में थे कि शीघ्रातिशीघ्र मुलाकात की रस्म को पूरी करके अपने पूर्व निश्चित कार्यक्रम में संलग्न हों और इसीलिए उन्होंने आगन्तुक को बहुत से पहले ही 'फरमाइए' शब्द से अपनी बात कहने का अवसर दिया। परन्तु आगन्तुक एक काफी होशियार व सुलझा हुआ व्यक्ति मालूम होता था। उसके व्यवहार में उस कार्यकुशल व्यक्ति की सफल व्यावहारिकता स्पष्ट थी जो अपनी बात को अपने ढंग से कहने में दक्ष हो। क्षण भर में ही उसकी पैनी दृष्टि अपने अध्ययन में उपस्थित समाज पर दौड़ गई। साथ ही उसके मुंह से शब्द निकल पड़े—"अभी अर्ज करता हूं। जनाब के

कीमती समय को किसी फिजूल बात से बर्बाद करने की चेष्टा हरगिज नही करूगा। इतना कहते-कहते उसने अपनी जेब से चार पाच कार्ड निकाल और हर उपस्थित व्यक्ति के हाथ म एक एक थमा दिया। साथ ही बोला—

यदि श्रीमान को आपत्ति न हो तो क्षण भर के लिए खाली जगह का इस्तेमाल अपने लिए भी कर लू और इतना कहते कहते उसने एक खाली कुर्सी अपने लिए खीच ली। उस पर बैठते हुए अपनी व्यवहार स्वत त्रता का परिचय देते हुए उसने कहना प्रारम्भ किया—

महानुभावो के परिचय के अभाव मे यदि मैं 'श्रीमान और श्रीमतीजी' के नाम से आपको सम्बोधन करू तो आप मुझे माफ करेंगे। — साथ ही अपने चमडे के थले को किसी चीज की तलाश मे वह देखने लगा। कुछ पत्र संग्रह को बाहर निकालते हुए उसने फिर कहा— एक विशेषीय कम्पनी म एक बहुत बडे आदमी म उनका परिचय पूछने पर एक सज्जन स सख्त नाराज हो गये थे। तब से मैं उस परिस्थिति से अपने आपको बहुत दूर रखता हू।

अब तक अपने मतलब के कागज उसके हाथ म थ। उसने पत्र एक प्रतिलिपि उपस्थित व्यक्ति के हाथ म द दी। प्रत्येक पढ़ने लगा। उसकी समाप्ति तक वह मौन बैठा रहा।—ज्यो ही उसने अनुभव किया कि सब उसकी दी हुई पठन सामग्री को पढ चुक है वह फिर बोला—

इसम मैंने वही लिखा है जिसके लिए मैं अपने आपको किसी योग्य समझता हू। अपनी उन विज्ञापनाओ को इसम उल्लख नही है जो श्रीमान के काय म असम्बधित हो। अपना इतना परिचय देन के बाद मैं आशा करता हू कि श्रीमानो को दिलचस्पी मेरे म अवश्य होगी।—मैं उन सारे प्रश्नो का उत्तर देन म अपने आपको सौभाग्यशाली समझूगा जिन्ह श्रीमान मुझसे दिलचस्पी दिखाकर पूछने का कृपा करेंगे। यदि आपत्ति न हो तो मैं उसक लिए तयार हू।—मैं जानता हू कि श्रीमानो म भी मेरी परीक्षा प्रारभ हो।

वह चुप हो गया। उसके व्यवहार व वाणी म एक अनुभवशील योग्य व्यक्ति की स्थिरता थी। आम विश्वास उसके मूल व्यक्तित्व म

दृष्ट भावक आया। उसने एक-एक करके उपस्थित वृन्द पर अपनी दृष्टि दौड़ा दी। प्राय सब एक-दूसरे की ओर देखने में व्यस्त थे। मनेजर महोदय ने सिर्फ उसके वक्तव्य को सुनकर किसी विचार में अपना आँखें बंद कर रखी थी। इस बार की मुलाकात सम्भवत एक एक व्यक्ति से ही ओ मुलाकातें करते-करते एक कुशल व्यक्तित्व पर पहुंच चुका था। मनेजर महोदय भी वर्षों के अनुभवी थे और उन्हें जो करना होता था उसे वे बड़ी कुशलता से और शीघ्र करने की क्षमता रखते थे। वे तुरन्त किसी निश्चय पर पहुंच गये से प्रतीत हुए। उनकी आँखें खुली और उन्होंने बोलना शुरू किया—

'हमें खुशी है कि जनाब ने बहुत थोड़े समय में अपनी योग्यता का बहुत अच्छा परिचय दे दिया। अपने निश्चय पर पहुंचने में अभी हमें देरी लगेगी। शायद हमारा सप्ताह भी लग जाय। चुनाव करते समय जनाब का व्यक्तित्व और कौशल निश्चय ही हमारे ध्यान में रहेंगे। इससे अच्छी और क्या बात हो सकती है कि आप-जैसे योग्य व्यक्ति का सहयोग हम इतनी सुलभता से प्राप्त हो जाय। अच्छा नमस्ते।'

साथ ही मनेजर महोदय ने आगन्तुक के सारे परिचय पत्र बटोरकर उसके एक हाथ में पकड़ा दिये और दूसरा हाथ मिलाकर तुरन्त उसे विदाई का संकेत भी दे दिया।

कार्यालय के बाहर अनेकों व्यक्ति और आये हुए खड़े थे। अधिकांश कोरोगीन अंदर जाने के लिए उचित अवसर की प्रतीक्षा में थे। सकोच शून्य व्यक्तियों के लिए प्रवेश की कोई बाधा नहीं थी। सबके देखते-देखते एक नवागन्तुक और अन्दर चला गया। पारस्परिक अभिवादन के बाद तुरन्त उसने एक कुर्सी अपने बैठने के लिए खींच ली। पूर्णिमा की ओर एक व्ययभरी दृष्टि फेंकते हुए उसने कहा—

"छिपे छिपे ही आपने तो बहुत-सी तैयारियां कर ली।"

"तैयारियां कुछ नहीं तुम्हारा ही इन्तजार था। हमारा पत्र मिल गया?"

"फिर तो खैरियत है। हां पत्र आपका मिल गया था परन्तु मैंने सोचा कि सबका साथ लाने में पहले बेहतर यही होगा कि आपका उनसे

'मैं तो दोनों ही नही पीती ।'

यह बम्बई है। दोनो म से एक का सहारा तो यहा लेना ही पडता है। एक बात और है। सुन्दरता और सेहत किसी पर इनका बुरा असर नहीं पड़ता। विश्वास न करें तो हमारी पूर्णिमा से पूछ लीजिए। हा, जल्दी फरमाइये क्या हाजिर किया जाय।" क्षणएक के लिए उपस्थित वन्द पर मौन मुस्कराहट छा गई। मनेजर साहब बोले—

'हमारी 'लाग्न' म तकल्लुफ की जगह नही है। जल्दी बोलिए मैडम।

'जभी आपकी मर्जी।

'फिर लिपटन मजूर है ?' प्रश्न के साथ ही मनेजर के होठो पर एक अथभरी मुस्कराहट खेल गई जिसका उत्तर उपस्थित व द ने जोर का हसी से दिया। सिफ पूर्णिमा और वीणा ने अपने मुह हसी को रोकने के लिए रुमाल द लिये। मनेजर चुप रहने वाले नही थे। उन्होंने फिर कहा—"मैं कोई काम बिना मजूरी के नही करता ' सुनकर नवागन्तुक पुरुष फिर हस पडा। पूर्णिमा और वीणा पर इस व्यवहार की कोई विशेष प्रतिक्रिया नही हुई।

'फिर लिपटन ही सही। जाओ, एक फुल सेट चाय का ले आओ। आना पा नौकर कमरे के बाहर हो गया। अब तक नवागन्तुक पुरुष ने अपने चमड़े के थल म से तस्वीरो का एक बडा 'एलबम' निकाल लिया। मनजर महोदय के आगे उसे रखते हुए वह बोला—

सब कलाकारा का परिचय उनकी तस्वीर के नीचे 'टाइप' किया हुआ है। जिस काम के लिए चाहिए प्राय सब इसम शामिल है। अनुभव उमर योग्यता, रग भाषा, कीमत सब प्रत्यक की तस्वीर के नीचे दज है। हर तस्वीर पर नम्बर पडा हुआ है। आप पसन्द करके मुझे नम्बर नोट करा दीजिये। अपनी आवश्यकता बताना तो आपका काम है और काम बनाना मेरा।

मनजर महोदय ने प्रस्तुत चित्र पुस्तिका के पन्ने पलटने प्रारम्भ किये। ज्यो ही किसी तस्वीर पर मनेजर की दृष्टि आरोपित होती नवागन्तुक पुरुष कुछ न कुछ उससे सम्बन्धित व्यक्ति की तारीफ म कह उठता। अपना

मिश्रित कर दिये। दोना रमणिया ने पहले पुरुषो को प्याले पकडा दिए और फिर स्वय उठाकर पीने लगी। नवागतुक पुरुषा ने दो एक घट अपने गले से उतारने के बाद कहा—

"मैं किस किसज की बात नही कह रहा था। वास्तव म मुझे एक किस्सा स्मरण हो आया था। बात यह थी कि एक बार एक प्रसिद्ध फिल्म निर्माता को पावती के 'रोल' के लिए एक लडकी की आवश्यकता हुई। कहानी का वह स्थल महाकवि कालीदास के 'कुमारसभवम' से सबधित था। अपनी आवश्यकता और पसन्द व्यक्त करने की दृष्टि से उन्होने मेरे सामने प्रथम सग के वे छन्द पढे जिनमे यौवन प्रवेश के समय पावती के शारीरिक सौदय का वणन था। एक दिन रात को मैंने उनके सामने अपनी इस प्रतिमा को ला खडा किया। इसे देखते ही वे पावती पावती चिल्लाकर नाच उठे। तब से वे मेरी खोज पर कभी अविश्वास नही करते। और

'परख के पहले ही पावती के रोल के लिए किसी को तुरन्त स्वीकार करने की बात समझ म नही आई गुप्ता साहब।

'बीच की कुछ बात मैं जान-बूझकर छोड गया। कारण नारी की उपस्थिति म नारी के सौन्दय की चर्चा मैं प्राय कम करता हूँ। यह मेरी संस्कृति और सस्कारो की आपत्ति है। खैर! आज मैडम मुझे माफ करेगी। बात इस तरह हुई कि मैं अपने कलाकार को लेकर स्टूडिओ म ही पहुँच गया। 'शूटिंग' चल रहा था इसलिए मेकप आदि के लिए कोई दिक्कत थी नही। तपस्विनी पावती के रूप म मैंने अपने कलाकार को निर्माता के सामने पेश किया। कई 'स्टिल' लिए गये। 'केमरामैन' को शकर के सबध म विभिन्न अगो की विभिन्नताए व्यक्त करने की हिदायत हुई। करीब तीनसौ फिट फिल्म शूट किया गया। दूसरे दिन हम सबने 'रशेज' देखे। निर्माता दिग्दर्शक केमरामैन सब के-सब अवाक रह गये। हिमालय की पुत्री कालीदास की कल्पना सोलहो कलाओ के साथ जैसे पर्दे पर उतर आई है। एक एक अग की परीक्षा के लिए बार बार सबधित 'शोट' देखे गये। बार-बार 'रशेज' रिपीट हुए। सर्वानुमति पर सर्वसम्मति से हमारे कलाकार को पावती के लिए स्वीकार कर लिया गया। ठीक आध घटे बाद कभी चाय की टेबल पर कान्ट्रैक्ट और चक पर हस्ताक्षर हो गये। स्वभावत दूर पुरुष उन

झाकियों को देखना चाहूँगा। इसी पुस्तिका के पृष्ठ पच्चीस से आप उन झाकियों का प्रारम्भ देखेंगे। यही वह कलाकार है, पार्वती के रूप में। मैंने कवि कालीदास की कल्पना का श्लोक रूप प्रसंग के लिए मैंने चित्र के नीचे लिख रखा है। उसी अवसर पर, उसी प्रसंग में लिए गये ये चित्र हैं। प्रथम चित्र शरीर की उस अवस्था का साक्षात्कार है जब शरीर की लता यौवन प्रवेश में स्वाभाविक शृंगार प्रारंभ करती है। वसना का अभाव इस चित्र में इसी दृष्टिकोण से रखा है ताकि परीक्षक मार्ग अंगों का सौन्दर्य एक-दूसरे के संबंध से एक साथ जांच सके। मदिरा के बिना मतवाला बना देने वाला यही सौंदर्यश्री है। यही कामदेव का बिना फल का बाधा बाण है। अब आगे पन्ना पलटिये। यहां चरण-स्थल कमल का आभास देंगे। और आगे चलिये। यह और अगला चित्र जांघों और नितम्बों के सौंदर्य का आपके हृदय तक पहुंचायेंगे। और आगे चलिए कुछ और आगे। यही है वह चित्र। श्लोक प्रारंभ होता है—

मध्येन सा वेदविलग्न मध्या बलित्रयं चारु बभार बाला।

आरोहणार्थं नवयौवनेन कामस्य सोपानमिव प्रयुक्तम्।

महाकवि कालीदास ने नवयौवन की नाभी पर की तीन सिकुड़नों को कामदेव के लिए उरोजों तक पहुंचाने की सीढ़ियों के रूप में रखा था। यही वर्णन इस चित्र में चित्रित है। इसी चित्र से यह भी प्रदर्शित होगा कि सटे हुए उरोजों के बीच इतना स्थान नहीं रह गया है कि कमलनाल का एक सूत भी उसमें समा सके। ध्यान से देखिये, परखिये। कल्पना के सौन्दर्य को पृथ्वी पर लाता हूं तब दुनिया मानती है मैनेजर साहब। आपके लिए भी मेरी सेवा सदा हाजिर है। सिर्फ आपका इन्तजार है। आवश्यकता मालूम हुई नहीं कि मैंने उसे पूरा किया। बस! अपनी तो इतनी सी ही गारण्टी है।

'धन्यवाद! आपके रहते वे भी चिन्ताएं तो हम हैं भी नहीं।'

रहनी भी नहीं चाहिए। आखिर हम हैं किस लिए।'

'एक चाय और हो जाय?"

अब नहीं, साहब। इस एलबम को रखियेगा?

"चित्रों में तो आप ही निहलाओ। हम तो असल के ही गाहक

हैं। साथ ही मनेजर महाशय न एनजम थन्क करा मिस्टर गुप्ता को पकडा दिया।

'कोई पसन्द आई भी ?'

जल्दी क्या है हम यहा है। आप भी दूर नहीं हैं। फुरसत म बातें कर लेंगे।

आपके लिए ता मडम वीणा को भी तयार कर दगा। क्या मडम ?'

मुलाकात तो हो ही गई है। इसी नाते कुछ अधिकार भी हो गया है। कभी-कभी ता तकलीफ आ दे हा दिया करेंगे।

ता अब कब आऊ ?

यह भी बताना पडगा। जब फुरसत हो। हमेशा एक रोज छोडकर, दो रोज छोडकर जब जी म आए।

फिर अभी जाना हो। आइये मडम।

धन्यवाद।

मिस्टर गुप्ता व मडम वीणा का बाहर जाना था कि दो प्रौढाओ ने साथ साथ इसी कमरे म प्रवेश किया। चाल-ढाल वेष भूषा व शृगार के प्रसाधनो की बहुलता इन पर दूर से यौवन का आभास देते थे परन्तु वास्तव म ये भी बीत यौवनाए ही थी। प्रवेश करते ही एक बोली— नई कम्पनी के मालिको के पास चाहे का टेक्ट के पसे न हो पर चाय पानी के तो मिल ही जाया करत है।

आजकल फीस बहुत कम कर दी मालूम होती है मडम।

'ओह! आप सुन रहे थे। माफ कीजिये मनेजर साहब। मैं तो अपनी सहेली स ऐस ही कुछ कह रही थी।

सहली चुप थी इसलिए मैंने उत्तर द दिया। आपको शुरू से ही अधिक बोलन का शौक है।

और आपको ?

अधिक बुलान का।

पहल तो किसी के प्रवेश करते ही आप चाय बिस्कुट का हुक्म भेज दिया करते थे।

वह समय बीत गया मडम।

'चाय बिस्कुट तो नहीं चीन हैं ?

'देखिय।'

"देखेंगे ता आप। मैं तो हुक्म दे आई हू।

'इतन में बरा ने चाय का नया सेट लाकर हाजिर कर दिया। क्षण भर म ही पहले वाले बरतना का बटोरकर वह कमरे के बाहर हो गया। आगन्तुका बोली—

यदि आपत्ति न हो तो उपस्थित वन्द का परिचय द दीजिये।

मनेजर किशोरीलाल न एक एक करके पहले से बैठे हुओ के नाम बता दिये। आगन्तुका न किसी की ओर देखा नही बल्कि प्याला म चाय उडेलती हुई बोली—

सबको नमस्कार।

किसी न कोई उत्तर इस नमस्कार का नहीं दिया। क्षण भर विराम कर बोली—

"यदि आपत्ति न हो तो हमारा नाम भी इनके सामने एक बार ले लीजिये।

आजकल किस नाम से मशहूर हैं ?

जिस नाम स जनाब जलील करना चाहें। साथ ही उसन तयार प्याले पकडाना शुरू कर दिय।

'वही बेबी अभी तक चलता है ?

मम्मी की मत्यु क साथ बेबी कहकर पुकारने वाले मर चल बस। नया प्याला उसने होठो स लगा लिया।

'तो मम्मी कहना प्रारम्भ कर दें ?

'वह उम्र मुझ नहीं आइ है। पय का घट गले म उतारकर उसने कहा।

'एक छोटी उम्र की छोकरी साथ रख ना। नाम तो सार्थक हो जायगा।

सुना वहिनजी। य नागर सिनेमा वाले थोड दिनों के बाद ही हम लोगो को यह कह करन लग आते हैं। आगन्तुका न अपना यह वक्तव्य पूर्णिमा का सम्बोधन करके कहा था। पूर्णिमा इनके आन के प्रारम्भ म ही

वृद्ध अप्रत्तिस्थ हो उठी थी। अपना अतीत उसका अनुभव म था। आा तुराआ व अतीत म सम्बध स अपन भविष्य की रूपरेखा अपन मस्तिष्क म उसे चिन्तित सी दिखाई दी। उसन देखा कि आग तुरा और उसकी सहेली अपन सामन आए चाय और बिस्कुटों को समाप्त करने म मलान है। उसने महसूस किया कि व आवश्यकता स ज्यादा पी रही हैं। प्रथम प्याल की समाप्ति पर पूर्णिमा न उनक प्याल दूसरी बार और अपन हाथ स पूण कर दिय। मनजर महोदय अपना प्रथम प्याला भी अभी समाप्त न कर पाय थ। बोल— मालूम होता है आज सुबह का खाना भी नहीं खाया। सोचा था आपके यहा खायेंगे।

सुबह जब हुई है ?

हम लोगों की सुबह इसी समय हुआ करती है।

और शाम ?

हिसाब लगा लें।

तुम्ह चाहिय अब और कुछ काम कर लो।

यह कीमती सलाह बहुत देरी म दी जनाब न।

पात्रता प्राप्त होने पर ही योग्य सलाह दी जानी चाहिये।

धन्यवाद। जाओ बहिन। और इतना कह वह अपनी सहेली का हाथ पकड कमरे के बाहर चल दी। मनजर महोदय न उनक जाते ही पीछे स हाथ जोड दिय। पूर्णिमा के लिए हर आग तुक और उसकी वार्ता एक समस्या थी। उसके मस्तिष्क म उनके सम्बध स काल्पनिक घटनाओ का एक अस्पष्ट चित्र उठा और कान धए म परिणत होकर लुप्त हो गया। मनजर महोदय से पूर्णिमा की यह मानसिक घटना छिपी न रही। उसन तुरत यह निश्चय कर लिया कि मुलाकात के इस सिलसिले को फौरन बन्द कर दना चाहिय। वह अपनी कुर्सी स उठ बठा और बोला—

चल। स्टेज का प्रबन्ध देख ल। उसके यह कहते ही सब उप स्थित बन्द उठ बठ। पूर्णिमा सबसे पहले कमरे के बाहर निकली। उसन देखा कि कार्यालय के आग आसपास अब भी अनेक यवित खड है। मनजर महोदय उस और अपने अन्य साथी को एक मुख्य सोपान स अपन साथ रगमच म उतार ल गय।

४

एक सप्ताह के भीतर भीतर रगमच की सुव्यवस्था हो पूर्वाभ्यास प्रारम्भ हो गया। नए पर्दे बने। नई बिजली की व्यवस्था हुई। नए पोशाक मिले। अनेकों विज्ञप्तियां तैयार हुइ। मुख्य मुख्य आकर्षक दृश्यों के विशेष कर उनके जिनमें पूर्णिमा अपनी समस्त सौंदर्यश्री के साथ मदमाते यौवन में आंदोलित होती हुई दिखाई जाती थी। कई अचल चित्र लिये गये। लेखक, मनेजर, विज्ञापक पत्र सम्पादक--सबने मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से उनके चुनाव में सहायता की। पूर्णिमा की सहमति व स्वीकृति के पश्चात उनकी अनेक छोटी बड़ी प्रतिलिपियां बनाई गई। उन्ही के आधार पर प्रदर्शन के दिन के लिये कई विराट चित्रपट तैयार किये गये। विज्ञप्तियों तथा विज्ञापन चित्रों की एक संग्रह पुस्तिका भी बनवाई गई। मैनेजर किशोरी लाल ने एक दिन रात्रि में इस संग्रह पुस्तिका की प्रतिलिपि को अपनी कम्पनी की मुख्य नायिका कुमारी पूर्णिमा को सादर व सप्रेम भेंट किया। इसे पाकर जीवन में पहली बार पूर्णिमा ने अनुभव किया कि मनुष्यों के संसार में उसकी भी कुछ हस्ती है। इसमें प्रदर्शित चित्रों में पूर्णिमा का सौंदर्य अपने सौगुने प्रभाव से निखर आया था। मैनेजर महोदय के चले जाने के बाद रात्रि के एक विलम्बित प्रहर तक आवेश में वह इसमें अपनेको देखती रही। अनेक चित्रों की मध्यस्थता से अपने चित्रित सौंदर्य के सत्य का विश्वास पाने के लिए उसने अपने आपको अपने सामने के शीशे में उतारा। उसका यौवन सौंदर्य सब उसके सामने था। परिचय-पुस्तिका उसकी क्षमता की साक्षी थी। फिर भी न जाने क्यों उसका विश्वास हिल जाता था। रह रहकर उसे विचार आता था कि यदि जनता ने उसे, उसके काम को पसन्द नहीं किया तो उसके भविष्य की सारी आशाओं पर पानी फिर जायगा।

पूर्वाभ्यास की प्रगति के साथ-साथ विज्ञापन के कार्य को मनेजर

आगन्तुक दर्शकों की अधीरता के वातावरण में नियत समय पर यव निका रगमच के एक पार्श्व में खिची। क्षण भर के लिए सारी रगशाला चित्र लिखी सी जान पडने लगी। विभिन्न गन्धों की अगरबत्तियों ने पहले से ही रगशाला के वायुमडल को अपने भीने पवित्र धूम्र से सुरभित कर रखा था। सप्त स्वरो की एक मधुर आलाप कानों में आई। साथ ही भगवान शकर की स्तुति में गायक का स्पष्ट स्वर सुनाई पड़ा। अब तक दर्शकों की आखों के आगे दृश्य उपस्थित हो चुका था। अगम्य पहाड हिमाच्छादित शिखर, जल प्रपात गगा की सकीर्ण धारा कन्दराओं में यत्र-तत्र समाधिस्थ सन्यासी। पृथ्वी जल तेज वायु आकाश,सूर्य चन्द्र तथा होता के प्रत्यक्ष रूप और ससार के स्वामी महादेव की सद्बुद्धि प्रदान करने के लिए प्रार्थना की गई।

नान्दी हो चुकने पर सूत्रधार ने मारिष पारिपार्श्वक को पुकारा। उनके पहुचते पहुचते ही दृश्य परिवर्तन हो गया। मरिष ने भास, सौमिल्लक और कवि-पुत्र के नाटकों की चर्चा की परन्तु सूत्रधार के यह समझाने पर कि नया होने से ही कोई अयोग्य नही होता और पुराना होने मात्र से ही योग्यता नही बढ जाती। उन्होंने कालीदास के मालविकाग्निमित्र नाटक के अभिनय का ही निर्णय किया। इस प्रस्तावना की समाप्ति के साथ ही दृश्य परिवर्तन हुआ। वकुलावलिका की भूमिका मे एक रमणी आई। दूसरे पार्श्व में महारानी का अन्य सेविका कुमुदनी का आगमन हुआ। पारस्परिक वार्ता में वकुलावलिका यह बता गई कि एक चित्र मे महारानी धारिणी के पास बैठी हुई मालविका को देखकर ही महाराजा उस पर मुग्ध हो गये और तभी से महारानी ने उस पर कडा पहरा बैठा रखा है। इस कथोपकथन ने दर्शकों का मालविका के सौन्दर्य के सम्बन्ध में कल्पना करने उनमें नायिका के सौन्दर्य के सम्बन्ध में एक उच्चस्तरीय उत्सुकता बनाए रखने में सहायता की। साथ ही विद्वानों को चतुर लेखक का स्त्री सुलभ ईर्ष्या स्वभाव का सकेत भी मिल गया। एक सफल नाटककार के प्रमाणस्वरूप लेखक प्रारम्भ में ही अपनी सुन्दर नायिका का महाराजा की प्रेयसी और महारानी की कोप भाजन बना दर्शकों की सक्रिय सहानुभूति उसके प्रति आकर्षित कर ले गये।

वकुलावलिका आगे बढी। आर्य गणदास नाट्याचार्य से साक्षात् होने

ही उमने उन्हे महारानी का सन्देश कह सुनाया और मालविका की कलात्मक प्रगति के विषय म प्रश्न किया।

लेखक को अपनी नायिका के प्रति अभी अनेकानेक उत्सुकताए पैदा करना था। वकुलावलिका के प्रश्न क उत्तर म जब नाट्याचाय गणदास ने यह बताया कि मालविका भाव बता देने के बाद उसे और भी अधिक सुन्दरता से अदा करती है। दशक सौन्दय क साथ उसकी कला के प्रति भी सजग हो गये। सुन्दरी, कलाकार कष्ट म किस भावुक दशक की सहानुभूति प्राप्त नही करगी ? इसी स्थल पर गणदास के प्रश्न पर वकुलावलिका ने बताया कि अन्तपाल दुग के रक्षक महारानी धारिणी के एक भाई ने इस कन्या को उसके पास सेवा मे इस आशा से भेजा है कि वह गाने बजाने की कला को अच्छी तरह सीख सकेगी। कथोपकथन से दशको की मालविका के प्रति उत्सुकता बराबर बढती गई। उसके सौन्दय के प्रति, उसकी कला क प्रति, उसकी क्षमता के प्रति। उसकी परिस्थिति ने मानवीय सहानुभूति का वातावरण अपने लिया पैदा कर लिए। सीमान्त के दुग रक्षक द्वारा गाने बजाने की सेवा के लिए भेजी हुई बाला रक्त-सम्बन्धिनी तो नही हो सकती यह तो विवेकशील दशक तुरन्त निश्चय कर चुके। फिर ? उत्तर दशक की कल्पना पर आश्रित था। रूपमयी, गुणमयी, पराधीना, निर्दोषा मालविका परन्तु फिर भी महारानी की कोपभाजिका। दशक अपनी उत्सुकता की चरम सीमा पर हृदया म सहानुभूति लिए आतुरता के साथ उसे देखने की इच्छा करने लगे। महाकवि कालीदास की कृति मालविका सहज ही मे रगशाला के समस्त दशको की नायिका बन गई। उसी नायिका की प्रतीक्षा मे रगशाला की आँखें आरोपित थी कि सहसा मच पर विषय परिवतन हो गया।

और साथ ही दृश्य परिवतन भी। महाराज अग्निमित्र अपने सभासदो के साथ बैठे हुए दिखाई दिये। वाहक अमात्य विदभ के राजा का एक पत्र लेकर उपस्थित हुआ। सवाद था कि विदभ के राजा का चचेरा भाई अपने वचन क अनुसार महाराज अग्निमित्र को अपनी बहन ब्याहने आ रहा था कि विदभ की सीमा के पास ही उसे बन्दी बना लिया गया। उसकी स्त्री और बहन भी कैद कर लिए गये थे, मगर उसकी बहन कथित धर-

पकड म वही गायब हो गई जिसकी खाज जारी है। विदभ के राजा ने अपने चचेरे भाई माधवसेन को मुक्त करने के बन्ते म महाराज अग्निमित्र द्वारा अपने साले मौय सचिव को मुक्त करने की शत रखी थी। परामश प्रारम्भ हुआ। अमात्य की राय रहा कि क्योंकि विदभ का राजा अभी गद्दी पर बैठने के कारण प्रजा मे अपनी जड नहीं जमा सका है इसलिए उस नय रोपे हुए दुबल पौधे की तरह बडी सरलता के साथ उखाडा जा सकता है। *निणय हुआ कि वीरसेन के नायकत्व म उसे जड से उखाड फेंकने के लिए* पर्याप्त सेना भेजी जाय।

शस्त्र युद्ध का यह एक निणय अभी पूण हुआ ही था कि दूसरे कुसुम युद्ध की प्रगति का समाचार देने महाराज के पास उनका अन्तरग विदूषक मित्र गौतम आया। महाराज अग्निमित्र मालविका को चित्र में देखने के बाद अपनी आखो से सशरीर मूत्तरूप मे देखना चाहते थ। महाराज की साध थी मालविका से मिलन की और यही अपना काय उन्होंन अपने विदूषक मित्र को सौपा था। प्रेम के सारे व्यापार गुप्त होते हैं इसी तथ्य को निबाहते हुए रगमच पर दिखाया गया कि काम पूण हो गया है। महाराज ने कान मे इसकी पूर्ति के समाचार सुने परन्तु कुछ ही सवादा म समस्त सूचना दशको को दे दी गई। महाराज अग्निमित्र दशकों की भावना के प्रतीक उन्हीं का मच पर जहा तक मालविका को देखने का सम्बन्ध था प्रतिनिधित्व करते थे। दशको की नायिका मालविका को देखने की आतुरता स्पष्ट रूप से नायक अग्निमित्र के चेहरे और शरीर पर थी। नायक का अपने दशकों के साथ सीधा सम्बन्ध था। आत्मभाव की दोनों के बीच साम्यता थी और यही कलाकार की विशेषता और कला की सर्वो त्कृष्टता थी। विवेकशील दशक सकेत मात्र से ही कला के इस प्राण से परिचित करा दिये गये।

नेपथ्य के एक ही सवाद मे दशको को यह सूचना द दी गई कि उनकी आतुरता की पूर्ति के लिए प्राकृतिक पष्ठभूमि तयार की जा रही है। और क्षण भर म ही इस पष्ठभूमि के नायक सगीताचाय्य हरदत्त और नाट्याचाय्य गणदास रगमच पर आ गये। कञ्चुकी न उन्हें महाराज के सामने पश किया। पारस्परिक योग्य अभिवादन के बाद दोनों कला विशारदों न महा

राज के समक्ष अपने प्रतिवेदन निवेदित किये। पारस्परिक स्पर्धा दोनों के विवाद का कारण थी। दोनों राजकीय सेवा में थे। आचार्यों के रूप में काय करते थे। हरदत्त की शिष्या इरावती था और गणदास की मालविका। दोनों ही अपनेको एक-दूसरे से बड़ा व अधिक योग्य मानते थे। महारानियों में भी उनकी योग्यता के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न मत थे। प्रस्तुत परिस्थिति पर बात इतनी बढ़ आई थी कि दोनों ने ही प्रस्ताव रखा कि कला के प्रदशन को ही आधार मानकर उनके बीच उनकी योग्यता के स्तर का निणय कर दिया जाय। दो योग्य कलाकारों द्वारा स्वस्थ स्पर्धा के वातावरण में अपना अपना प्रदशन एक उच्चतम स्पृहणीय कला प्रदशन के स्तर का सकेत देता था। सूचना मात्र उत्साहवधक थी उत्सुकतामयी भी।

इसी अवसर पर महारानी धारिणी और परिव्राजिका आ गये। महाराज ने भगवती धारिणी का इस स्पर्धा में पच बनने का आग्रह किया। देवी धारिणी ने कथित झगड़े के प्रति ही अपनी उपेक्षा प्रदर्शित की। महाराज तो इस अवसर को अपनी साध पूर्ति का साधन जानते थे। उनके उद्देश्य को समझकर जब परिव्राजिका ने योग्यता का आधार शिक्षक की सिखाने की क्षमता पर आश्रित बताया तो सिवाय देवी धारिणी के सभी कथित सिद्धान्त पर सहमत हो गये। विद्वान दर्शकों के समक्ष नारी की ईर्ष्या स्पष्ट हो गई। नाटक की नायिका मालविका की उपस्थिति के लिए एक सवश्रेष्ठ अवसर उपस्थित हो गया। अपने आचाय गणदास की कला की प्रतीका के रूप में उसे निर्णायकों के समक्ष उपस्थित होना था। एक बार और पात्रों तथा दर्शकों के बीच एकात्म भाव कला के निणायकों के रूप में पैदा हुआ।

इस मंजिल पर देवी धारिणी महाराज तथा उनके मित्र गौतम की मालविका को देखने की इस योजना से अनभिज्ञ नहीं थीं। प्रदशन से पूव महाराज को यह कहे बिना न रही कि यदि आयपुत्र अपने राज्य की देखभाल करने में इतनी कला लगाते तो कितना श्रेयस्कर होता। इस आक्षेप पर महाराज ने जब यह उत्तर दिया कि इसमें उनका कोई हाथ नहीं है और जो व्यक्ति एक सी विद्या वाले होते हैं वे एक-दूसरे की उन्नति क्षमा नहीं सह सकते, तो सहसा वमत्य वक्ता का मनोवैज्ञानिक तथ्य और कुशल नागर का व्यावहारिक और सामाजिक ज्ञान सहज में उनके मुंह से स्पष्ट हो गये।

इतने म ही नेपथ्य मे मृदग की ध्वनि सुनाई दी। मालविका क प्रवेश का उपयुक्त अवसर आ गया था। रगशाला म उसके प्रति सहानुभूति और उत्कण्ठा अपनी चरम सीमा पर थी कि कगन, पायलों म बधे नूपुर स्वरों के आरोह के साथ बज उठे। एक अलौकिक सौन्दय दशकों के सामने था। मूर्त सौन्दय। नारी का रमणी रूप, अपनी सर्वोत्तम सज्जा म, अपने सर्व श्रेष्ठ शृगार म। कुछ क्षणों के लिए मूर्ति सा एक मोहक मुद्रा म वह रग मच के मध्य म खड़ी हो गई। अलौकिक सौन्दय था। सत्य से भी अधिक सुन्दर। चित्र से भी अधिक चित्ताकर्षक। मूर्ति से भी अधिक मोहक।

क्षण भर के लिए रगशाला म जादू की स्तब्धता छा गई। दशकों के हृदय आखों की राह मच पर चले गये। अतृप्त आखें अपलक हो प्रस्तुत सौन्दय रस का पान करने लगीं। मूक रह इस सौन्दर्यश्री की ओर अधिक देर देखते रहना भी असम्भव सा हो गया था कि सहसा रगमच से नायक अग्निमित्र के मानसिक भाव सुनाई दिये—

'वाह! सिर से पाव तक यह तो सब सुन्दरी है। बड़ी-बड़ी आखें, चमकता हुआ शरद चन्द्र जैसा मुख, कधों पर तनिक झुकी हुई भुजाए उभरते हुए कठिन उरोज, चिकनी काखें, मुट्ठी भर की कमर, मोटी मोटी जाघें, तनिक झुकी हुई पावों की अगुलिया। मालूम होता है जैसे ये सब अग नाट्य विशारद आचार्य गणदास के कहने पर ही गढ़े गये हों—

अपने मन की यह बात नायक द्वारा मच पर बहुत धीरे से कही गई थी। वाणी मन्द होते हुए भी सारी रगशाला मे स्पष्ट रूप से सुनाई दी। अपने हृदय की बात को नायक के मुह से सुन दशक हर्षित व प्रभावित हुए बिना न रह सके। इससे अधिक सवाद प्रस्तुत सौन्दय का अपमान था, उसकी अवहेलना थी। इसीलिए कला प्रदशन के अवसर पर श्रोताओं द्वारा दशकों द्वारा सयत शब्दों व सयत आचरण का व्यवहार ही सास्कृतिक सस्कृति समझी जाती रही है। यही समझ रगशाला और रगमच दोनो ने ही इसका पालन किया। नायक के शब्दों की समाप्ति के साथ ही पुन उत्सुकता भरी शान्ति रगशाला म सर्वत्र छा गई।

कला प्रदशन के पूर्व कलाकार सदैव ऐसी ही शान्ति की प्रतीक्षा मे होता है। इसी प्रस्तुत शान्ति की प्रतीक्षा नाट्याचार्य गणदास की पटु

शिष्या मालविका को भी थी। ज्यो ही अवसर के लिए उपयुक्त शांति का उसने अनुभव किया, एक मधुर आलाप उसके मुह से निकला। स्वरो की शुद्धता व स्पष्टता से ही उच्चस्तरीय सगीत का आभास मिलता था। गान, नृत्य व नाट्य-कला के इन तीनो अगो का सम्यक एकात्मभाव प्रदर्शन ही सगीतकार की समस्या थी। अपनी वेश भूषा सज्जा व प्रसाधनो के अनुकूल ही उसने अपनी रागिणी का चयन किया। शुद्ध रूप के स्वरो के आरोह अवरोह ने शीघ्र ही भावात्मक रागिनी के एक रूप को खडा कर दिया। श्रोतागण वादी-सवादी स्वरो की हृदय-स्पर्शी छेड से भावमयी रागिनी के रस मे डूब-से गये। नयनो की तुष्टि के लिए सौन्दर्यश्री स्वय उपस्थित थी। कानो की तृप्ति के लिए कर्णप्रिय स्वरो का सागर हिलोरें लेने लगा।

ज्यो ही कलाकार ने अनुभव किया कि उसने अपने दर्शको के साथ एकात्मभाव प्राप्त कर लिया है, उसने आत्म प्रदर्शन के लिए साहित्य का आश्रय लिया। यह एक गीत था। शब्द ये—

अब सम्भालो आन प्रीतम !
समर्पण तन प्राण, प्रीतम ! अब सम्भालो
प्रिय मिलन दुर्लभ, निराशा !
नयन बाया फरके, आशा !
पराधीना पथ निहारू !
साध जाग मन वारू,
गिरी अब तो थाम, प्रीतम !
अब सम्भालो आन प्रीतम !

कलाकार ने ज्यो ही प्रियतम की पुकार मे अपनी बाहे ऊपर उठाई सहसा दर्शको का ध्यान उसके कसे हुए उन्नत उरोजो की ओर आकर्षित हो गया। गीत की प्रथम पक्ति के साथ ही उसने सहज भाव से एक अभिसारिका की विवशता की आखिरी सीमा को व्यक्त कर दिया। दर्शक—श्रोताओ की सहानुभूति को आकर्षित करने के लिए यह एक अचूक पुकार थी। सुनकर न नायक चुप रह सकता था, न दर्शक व श्रोता।

गीत की द्वितीय पक्ति के आखिरी शब्दो को दोहराते-दोहराते तो उसने सारी रगशाला को ही अपना बना लिया। तन और प्राणो के समर्पण से

रूप के रसिक उसके अंग प्रत्यंग की प्रशंसा कर रहे थे। स्वर के लोभी उसकी कर्णप्रिय आवाज की तारीफ में संलग्न थे। साहित्यिकों को उसका शुद्ध तथा स्पष्ट उच्चारण पसन्द आया। कलाकारों को उसकी नैसर्गिक भाव-व्यंजना अच्छी लगी। मूर्तिकारों के लिए उसकी मुद्राएँ उनकी कलाकृतियों के लिए एक आधार बन गईं। व्यवसायी उसके विभिन्न चित्रों के माध्यम से अपनी व्यवसाय सामग्री के विज्ञापन की रूप रेखा बनाने लगे। विलासियों ने किसी भी कीमत पर सौन्दर्य की इस सुकुमारिता को हासिल करना चाहा। कामविकृतों ने योजना बनाई कि पत्र लिख लिखकर वे परस्पर भाई-बहन का सम्बन्ध स्थापित कर लेंगे और चित्रों का आदान प्रदान करके अनायास इस सुन्दरी से सम्पर्क स्थापित कर लेंगे। सारांश यह कि रंगशाला में वातावरण कुछ ऐसा बन गया जिससे यह स्पष्ट प्रकट होता था कि पूर्णिमा का प्रदर्शित कौमार्य अब अकेले में अछूता नहीं रहने दिया जा सकता।

इस वातावरण में नाटक की प्रगति पुनः प्रारम्भ हुई। दो अंक समाप्त हो चुके थे। यह तीसरा अंक था। समाहितिका नाम की दासी महाराज के उपवन से नीबू लेने आई। सुनहरे अशोक की ओर टकटकी लगाए उसने मालिन मधुकारिका को देखा। दोनों के संवाद से यह सूचना दी गई कि निर्णायकों द्वारा आचार्य गणदास ही मालविका की शिक्षा के सम्बन्ध में अधिक योग्य ठहराये गए। साथ ही प्रासाद की दासी समाहितिका ने यह भी बताया कि महाराज मालविका को बहुत चाहने लगे हैं परन्तु महारानी धारिणी का मन रखने के लिए वह अपने प्रेम का स्वतन्त्र होकर प्रदर्शन नहीं करते। मालविका की दशा उसने मालती की कुम्हलाती हुई माला की तरह बताई। और ज्यों ही ये चलीं महाराज और उनके विदूषक मित्र गौतम प्रमद वन में आये। रानी इरावती की ओर से आज महाराज को झूले का निमन्त्रण था। पर महाराज को बातों से पता चलता था कि वे मालविका के प्रेम में परेशान हैं। उनके मित्र गौतम उन्हें बसन्त के फूलों के शृंगार की ओर आकर्षित करते हैं जिन्हें देखकर उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता होती है।

इतने में ही मालविका इसी प्रमद वन में आ जाती है। मन करता है। फूलों की मकरन्द से पूर्ण अशोक की छाया के नीचे वह बैठती है। महा

राज उसे देखकर खिल उठते हैं। उसके हृदय की थाह पाने के लिए दोनों मित्र एक लता के पीछे छिप जाते हैं। मालविका के मुह से सहसा निकल जाता है—

"अरे हृदय ! तू एसी चाह क्यो करता है जिस पर न तो कोई अपना वश ही है और न जहा तक अपनी पहुच ही है। मुझे सताने मे तुझे क्या मिल रहा है।"

सुनकर विदूषक राजा की ओर देखता है। थोडी देर में यहा महाराज की सन्देश-वाहिका बकुलावलिका आती है और मालविका के पावो म महावर लगाती है। यह शृगार महारानी धारिणी की आज्ञानुसार अशोक को पुष्पित कराने के लिए किया जा रहा है।

दूसरी ओर अपने पूर्व निश्चित कार्यक्रम के अनुसार रानी इरावती अपनी दासी निपुणिका के साथ प्रमद वन म प्रवेश करती है। प्रथम सवाद से ही प्रतीत होता है कि रानी मदिरा पिये हुए है। वह पूछती है—

'निपुणिका ! बहुत सुना करती हू कि मदिरा पीने से स्त्रिया बहुत सुदर लगने लगती है। क्या यह कहावत सच है ?'

'पहले तो यह कहावत ही थी, पर आज तो यह सत्य दिखाई देता है।'

"चल, चल ! मुहदेखी रहने दे। अच्छा, यह बता कि पता कैसे चले कि स्वामी झूलाघर पहुच गये हैं ?"

"यह तो आपका अखण्ड प्रेम ही बता रहा है।

"ठकुरसुहाती रहने दे। लल्लो चप्पो छोड, सच-सच बता।'

'बस तौलव का प्रसाद पाने के लोभी आर्य गौतम ने कहलाया है कि देवी को जल्दी स भेज दो।'

'दासी ! मद इतना चढ गया है कि आर्यपुत्र को देखने की आकुलता होते हुए भी पाव आगे नही बढते।

लीजिए झूलाघर म तो आप पहुच गई।'

"आर्यपुत्र तो यहा कहीं दिखाई ही नही पड रहे।

'ध्यान स देखिय, स्वामिनी ! आपसे हसी करने के लिए यहीं कही छिपे होगे। आइये, हम लोग भी प्रियगु के लता मण्डप मे चलकर अशोक के तले प्रस्तर शिला पर बठें।'

रूप ने रसिक उनके अंग प्रत्यंग की प्रशंसा कर रहे थे। स्वर के लोभी उसकी कर्णप्रिय आवाज की तारीफ में संलग्न थे। साहित्यिकों को उसका शुद्ध तथा स्पष्ट उच्चारण पसन्द आया। कलाकारों को उसकी नैसर्गिक भाव-व्यंजना अच्छी लगी। मूर्तिकारों के लिए उसकी मुद्राएं उनकी कलाकृतियों के लिए एक आधार बन गईं। व्यवसायी उसके विभिन्न चित्रों के माध्यम से अपनी व्यवसाय सामग्री के विज्ञापन की रूप रेखा बनाने लगे। विलासियों ने किसी भी कीमत पर सौन्दर्य की इस सुकुमारिता को हासिल करना चाहा। कामविह्वलों ने योजना बनाई कि पत्र लिख लिखकर वे परस्पर भाई-बहन का सम्बन्ध स्थापित कर लेंगे और चित्रों का आदान प्रदान करके अनायास इस सुन्दरी से सम्पर्क स्थापित कर लेंगे। सारांश यह कि रंगशाला में वातावरण कुछ ऐसा बन गया जिससे यह स्पष्ट प्रकट होता था कि पूर्णिमा का प्रदर्शित कौमार्य अब अवश्य मे अछूता नहीं रहने दिया जा सकता।

इस वातावरण में नाटक की प्रगति पुनः प्रारम्भ हुई। दो अंक समाप्त हो चुके थे। यह तीसरा अंक था। समाहितिका नाम की दासी महाराज के उपवन से नीबू लेने आई। सुनहरे अशोक की ओर टकटकी लगाए उसने मालिन मधुकारिका को देखा। दोनों के संवाद से यह सूचना दी गई कि निर्णायकों द्वारा आचार्य गणदास ही मालविका की शिक्षा के सम्बन्ध में अधिक योग्य ठहराये गए। साथ ही प्रासाद की दासी समाहितिका ने यह भी बताया कि महाराज मालविका को बहुत चाहने लगे हैं परन्तु महारानी धारिणी का मन रखने के लिए वह अपने प्रेम का स्वतन्त्र होकर प्रदर्शित नहीं करते। मालविका की दशा उसने मालती की कुम्हलाती हुई माला की तरह बताई। और ज्यों ही ये चलीं महाराज और उनके विदूषक मित्र गौतम प्रमद वन में आये। रानी इरावती की ओर से आज महाराज को झूले का निमन्त्रण था। पर महाराज की बातों से पता चलता था कि वे मालविका के प्रेम में परेशान हैं। उनके मित्र गौतम उन्हें वसन्त के फूलों के शृंगार की ओर आकर्षित करते हैं जिन्हें देखकर उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता होती है।

इतने में ही मालविका इसी प्रमद वन में आ जाती है। मैले कपड़े हैं। फूलों की सजावट से शून्य अशोक की छाया के नीचे वह बैठती है। महा

राज उसे देखकर खिल उठते हैं। उसके हृदय की थाह पाने के लिए दोनों मित्र एक लता के पीछे छिप जाते हैं। मालविका के मुख से सहसा निकल जाता है—

'अरे हृदय! तू ऐसी चाह क्यों करता है, जिस पर न तो कोई अपना वश ही है और न जहां तक अपनी पहुंच ही है। मुझे सताने में तुझे क्या मिल रहा है।

सुनकर विदूषक राजा की ओर देखता है। थोड़ी देर में यही महाराज की संदेश-वाहिका बकुलावलिका आती है और मालविका के पांवों मे महावर लगाती है। यह शृंगार महारानी धारिणी की आज्ञानुसार अशोक को पुष्पित कराने के लिए किया जा रहा है।

दूसरी ओर अपने पूर्व निश्चित कार्यक्रम के अनुसार रानी इरावती अपनी दासी निपुणिका के साथ प्रमद वन में प्रवेश करती है। प्रथम संवाद से ही प्रतीत होता है कि रानी मदिरा पिये हुए है। वह पूछती है—

"निपुणिका! बहुत सुना करती हूं कि मदिरा पीने से स्त्रियां बहुत सुंदर लगने लगती है। क्या यह कहावत सच है?'

"पहले तो यह कहावत ही थी, पर आज तो यह सत्य दिखाई देता है।"

'चल, चल! मुंहदेखी रहने दे। अच्छा यह बता कि पता कैसे चले कि स्वामी झूलाघर पहुंच गये हैं?'

"यह तो आपका अखण्ड प्रेम ही बता रहा है।'

"ठकुरसुहाती रहने दे। लल्लो चप्पो छोड़ सच-सच बता।

"बस ता मैंने का प्रसाद पाने के लोभी आर्य गौतम ने कहलाया है कि देवी को जल्दी से भेज दो।

'दासी! मद इतना चढ़ गया है कि आर्यपुत्र को देखने की आकुलता होते हुए भी पांव आगे नहीं बढ़ते।

'लीजिए झूलाघर मे तो आप पहुंच गई।

"आर्यपुत्र तो यहां कहीं दिखाई ही नहीं पड़ रहे।

'ध्यान से देखिये स्वामिनी! आपसे हंसी करने के लिए यहीं छिपे होंगे। आइये हम लोग भी प्रियंगु के लता मण्डप में चलकर तले प्रस्तर शिला पर बैठें।

रूप मे रगिन उसके अग प्रत्यग की प्रशसा कर रहे थे। स्वर के सोमा उसकी कर्णप्रिय आवाज की तारीफ म मसग्न थे। साहित्यिको को उसका शुद्ध तथा स्पष्ट उच्चारण पसन्द आया। कलाकारो को उसकी नैसर्गिक भाव-व्यजना अच्छी लगी। मूर्तिकारो के लिए उसकी मुद्राए उनकी कलाकृतियो के लिए एक आधार बन गई। व्यवसायी उसके विभिन्न चित्रो के माध्यम से अपनी व्यवसाय सामग्री के विज्ञापन की रूप रेखा बनाने लगे। विलासियो ने किसी भी कीमत पर सौन्दर्य की इस सुकुमारिता को हासिल करना चाहा। कामविह्वलो ने योजना बनाई कि पत्र लिख लिखकर वे परस्पर भाई-बहन का सम्बन्ध स्थापित कर लेंगे और चित्रो का आदान प्रदान करके अनायास इस सुन्दरी से सम्पर्क स्थापित कर लेंगे। साराश यह कि रगशाला म वातावरण कुछ ऐसा बन गया जिससे यह स्पष्ट प्रकट होता था कि पूर्णिमा का प्रदर्शित कौमार्य अब अकेले मे अछूता नही रहने दिया जा सकता।

इस वातावरण म नाटक की प्रगति पुन प्रारम्भ हुई। दो अक समाप्त हो चुके थे। यह तीसरा अक था। समाहितिका नाम की दासी महाराज के उपवन से नीबू लेने आई। सुनहरे अशोक की ओर टकटकी लगाए उसने मालिन मधुकारिका को देखा। दोनो के सवाद से यह सूचना दी गई कि निर्णायको द्वारा आचार्य गणदास ही मालविका की शिक्षा के सम्बन्ध से अधिक योग्य ठहराये गए। साथ ही प्रासाद की दासी समाहितिका ने यह भी बताया कि महाराज मालविका को बहुत चाहने लगे हैं परन्तु महारानी धारिणी का मन रखने के लिए वह अपने प्रेम को स्वतन्त्र होकर प्रदर्शित नही करते। मालविका की दशा उसने मालती की कुम्हलाती हुई माला की तरह बताई। और ज्यो ही य चली महाराज और उनके विदूषक मित्र गौतम प्रमद वन म आये। रानी इरावती की ओर से आज महाराज को झूले का निमन्त्रण था। पर महाराज की बातो से पता चलता था कि वे मालविका के प्रेम मे परेशान हैं। उनके मित्र गौतम उन्हे बसन्त के फूलो के शृगार की ओर आकर्षित करते हैं जिन्हे देखकर उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता होती है।

इतने म ही मालविका इसी प्रमद वन म आ जाती है। मले कपडे हैं। फूलो की सजावट से शून्य अशोक की छाया के नीचे वह बैठती है। महा

गौतम फिर बाला—

'क्यों बकुलावलिके ! मत्र जान बूझकर भी तुमने इह एसी ढिठाई से रोरा क्या नहीं ?

आय ! यह महारानी की आज्ञा का ही पालन हो रहा है। इसीलिए यह एसी ढिठाई करने म परवश थी। महाराज क्षमा करें।' महाराज बोले—

अच्छा यह बात है तो कोई अपराध नहीं। उठो भद्रे !'

ठीक है, महारानी की बात ता माननी ही चाहिए थी।'

क्या निलासिना ! तुम्हारा किसलय के समान यह कोमल बाया पाव अशोक पर लगने स कहीं दुखने तो नहीं लगा है ?

रानी इरावती ने इस प्रेम प्रदशन को देखा। इतने मही मालविका बोली—

आओ बकुलावलिके ! महारानी का सूचना द आवें कि आपकी आज्ञा का पालन कर लिया गया है।

पहले महाराज से यह प्राथना करो कि व तुम्हें छोड दें।

'तुम जा सकती हो भद्रे ! पर एक बात मेरी सुननी जाओ।'

देखो ध्यान देकर सुनो। हा महाराज ! आज्ञा कीजिये।

देखो सुन्दरी ! बहुत दिनों म इसी अशोक की तरह मुझमें भी धय के फल नहीं आ रहे हैं। इसलिए तुम्ह छोडकर और किसी स प्रेम न करने वाले मुझ सेवक के लिए मन की साध भी अपने स्पश का अमृत पिलाकर आज तुम पूरी कर दो।

रानी इरावती के लिए यह असह्य था। वह इसी क्षण प्रत्यक्ष होती हुई बोली— हा हा पूरी करो, पूरी करो। अशोक म अभी फूल नहीं आये। पर ये तो अभी से फूल रहे हैं।'

परिस्थिति बदल गई। रानी इरावती पहले बकुलावलिका पर क्रुद्ध हुई और फिर महाराज पर अविश्वास का दोष लगाया। महाराज बोले भी कि उन मालविकासे क्या लेना देना है। वनो उमा की अनुपस्थिति म मात्र विराम मन बहलाव कर रहे थ मगर रानी न उनका विश्वास नहीं किया। पर किसी गिरती हुई घना वर्षा का तरह महाराज पर बरस पडी। महाराज न बहुत चापलूसी का कि उनका चण्डीरूप शान्त हो मगर य अर

"यही ठीक है।'

यहा निपुणिका रानी इरावती को वकुलावलिका और मालविका की उपस्थिति की सूचना देती है। महाराज की तलाश का कहने पर वह सुनती है —

'सखी! मेरे पर ही आम नहीं बढ रहे ह। इधर मद मुझे बेहाल कर रहा है। पर मन मे जो खटका उठ गया है उसे तो मिटाना ही होगा। इन सब बातो से तो मेरा जी जल जाता है।

वकुलावलिका और मालविका रानी इरावती की उपस्थिति से अचेत हैं। यही तथ्य मालविका के लिए महाराज और आर्य गौतम के लिए भी सत्य है। पारस्परिक वार्ता म मालविका महाराज के प्रति अपने प्रेम की बात कह देती है। उसे वकुलावलिका द्वारा महाराज के प्रेम का आश्वासन प्राप्त होता है। फिर भी वह डरती है। महारानी का व्यवहार उसकी समस्त आशाओं पर तुषारापात कर देता है। वह कहती है—

मुझ पर कोई विपदा आए तो तू मुझे न छोड़ देना।

कुछ ही देर म वकुलावलिका ने मालविका के पांव लाक्षा रंग से रंजित कर दिए। अब वह अशोक के फूलने की क्रिया सम्पादित करने के लिए तयार थी। इसी समय वकुलावलिका ने कहा—

ना यह राग रंग से भरा और आनन्द लूटने योग्य तुम्हारे आगे ही तो खड़ा है।

कौन? महाराज?

अरे महाराज नहीं। य है अशोक की शाखा म लटकन वाले पत्तो का गुच्छा। ना इस कानो पर सजा लो।

सवाद सुनकर महाराज अपनी प्रमिका स मिलने के लिए व्यग्र हो उठे। अवसर की प्रतीक्षा था। अपन विदूषक मित्र की सलाह पर वे सामने आ गये। मालविका ने अशोक पर अपनी लात जमाई ही थी कि उसे आर्य गौतम की वाणी सुनाई दी। बोला—

'वन्दिनी जी! क्या हमारे प्यारे मित्र अशोक पर अपनी बाइं लात जमाकर आपने कोई अच्छा काम किया है?

दोनो ने सकपका कर माथा नवाकर महाराज को देखा। मालविका डर गई।

प्रतीहारी ने सूचना दी कि मन्त्री वाहतक को राजकाय के लिए महाराज की प्रतीक्षा है। वे महारानी से आज्ञा ले जयसेना के साथ प्रमद वन मे आ गये। उधर नाग मुद्रा जडित अगूठी के सहारे गौतम ने मालविका व वकुलावलिका को माधविका के पहरे से छुडा लिया।

गौतम महाराज को वही ले गया, जहा मालविका तथा वकुलावलिका बैठी महाराज के एक मित्र के सम्बन्ध मे पारस्परिक बातें कर रही थी। महाराज को उनकी बातों से अपने प्रति मालविका के प्रेम की थाह मिल गई। वे सामने आ गये। विदूषक और वकुलावलिका बहाना बनाकर दूर ओझल हो गये।

लताओं और वृक्षो की ओट म महाराज का मालविका से एकात मिलन होता है। उसके अगो की प्रशसा के वे पुल बाध देते हैं और उसे पान के लिए बढते हैं। मालविका पकड म आकर अपनको छुडाना चाहती है। उसके अग प्रत्यग की आभा क्षण क्षण म व बिजली की चमक की तरह दमते हैं। एक प्रेम म अधीर है दूसरी लज्जावश समपण मे असमथ। इसी परिस्थिति म दोनो ओट मे आ जाते हैं—

दूसरे पाश्व स रानी इरावती व निपुणिका आती ह। उनके सवादो से यह स्पष्ट है कि अब रानी इरावती महाराज का पुन मनाने की फिक्र मे हैं। इसी समय चेटी से उसे सवाद मिलता है कि महारानी धारिणी की यह राय है कि अब उन्हे महाराज से अधिक रूठे नही रहना चाहिए। रानी इरावती इस प्रस्ताव से सहमत है। पर इसी क्षण एक ओर विदूषक गौतम को स्वप्नावस्था म बडबडाते देखती हैं। उसे डराने के लिए निपुणिका उस पर एक लकडी फेंकती है वह साप साप कहकर जाग उठता है। उस भयभीत देख महाराज कुज स बाहर आते हैं। पीछे पीछे उन्हे उस रास्ते से न जाने के लिए मना करती हुई मालविका आती है। पुन रानी इरावती से इनका साक्षात्कार हो जाता है। खम्भे के पीछे से प्रगट होकर रानी इरावती महाराज से पूछती है—

"कहिए। दिन मे मिलने का सकेत करने वाले जोडे के मन की साध पूरी हो गई न ?"

महाराज बहुत कोशिश करते हैं कि रानी को मनायें परन्तु अब वह

फन रहे। इसी बीच मालविका व वकुलावलिका चल दी। रानी इरावती भी नाराज हाकर चली गई। मित्र गौतम न महाराज को ऐसी परिस्थिति म यही सलाह दी कि वे भी तुरत चल दें। महाराज ने बात मान ली और वे चले गय।

परतु बहुत शीघ्र उपयुक्त घटनाओ की सूचना राजप्रासाद म पहुच गई। महारानी धारिणी ने रानी इरावती की मान मर्यादा रखन के लिए दासी मालविका को उसकी सहेली वकुलावलिका के साथ महाराज के प्रति प्रेम प्रदान के अपराध म काल-कोठरी म डाल दिया। नीचे के भडार की रक्षिका माधविका को महारानी धारिणी की ओर से आदेश मिला कि वह उन्ह उनकी अगूठी देखे बिना न छोडे। महाराज को विदूषक गौतम ने बताया कि मालविका व वकुलावलिका को नाग कयाओ की तरह पावो म बेडिया डालकर एसे पाताललोक म डाल दिया गया है कि सूय की किरणें भी उन तक नही पहुच सकती।

महाराज सुनकर चितित हो उठे। आखिर उनकी मुक्ति क लिए योजना बनाई गई।

प्रतीहारी से महाराज का मालूम हुआ कि महारानी धारिणी बयार वाले भवन म पलग पर बठी है उनके पाव म लाल चन्दन लगा हुआ है और परिव्राजिका कथा सुनाकर उनका मनबहलाव कर रही है तो व इस अव सर से लाभ उठान का सोचने लग। जयसना का उद्यान आना दी कि वह उन्हें महारानी के पास ले चल। उन्होने वहा पहुचकर महारानी का सुख पूछा ही था कि विदूषक गौतम भी साप काटने की पीडा म कराहते वहा आ पहुचे। परिव्राजिका न साप म काटे स्थान को काट डालन जला डालने अथवा उसम स रक्त निकाल दन की सलाह दी। महाराज न तुरन्त राज वद्य ध्रुवसिद्धि को बुलाने का आज्ञा दी। गौतम पीडा म चिल्लाता रहा। मरणासन व्यक्ति की तरह वह महाराज को अपनी मा की समान दन लगा। उसन महारानी स मा भसा मागी भूल म हुई भूलो क लिए।

ध्रुवसिद्धि आय। उन्होंने ऐसी वस्तु क लिए माग की जिसम नाग मुद्रा जडी हुई हो। महारानी न तुरन्त अपनी नाग मुद्रा स जडित अगूठी ⋯ दे दी। अगूठी लकर व उस पानी म घ⋯ र महार ल गय। इसी दाण

अधरों को आरक्तक राग से लाल किया और उन्हें पीनाभ लोहित वर्ण देने के लिए लोध्र रेणुओं से मना। पदतल तक उसने लाक्षा राग से रंजित किए थे जिससे प्रदर्शित युगीय सौंदर्य की प्रतीका वह बन सके। प्रसाधना ने उसके सौंदर्य को वह श्री दे दी जो कल्पना में भी कहीं अधिक सुंदर थी। ऐसी परिस्थिति में यह निर्णय करना भी बहुत कठिन हो गया था कि प्रसाधना ने उसके सौंदर्य को ही बढ़ाया है अथवा उसके सौंदर्य के कारण प्रसाधना की श्रीवृद्धि हुई है। दोनों की एकरूपता ही इस रूपश्री की सफलता थी। रंगशाला के हृदय में उनके मस्तिष्क में उसकी सौंदर्य विनावली के दृश्य आरोपित हो गए थे और उनसे अनायास मुक्ति पाना उनके लिए असम्भव प्राय हो गया था। नारी के रमणी रूप से—उसकी सौंदर्यश्री से वे इस प्रकार प्रभावित हो चले थे कि वे स्वयं चाहते भी नहीं थे कि वे उसके प्रभाव से सौन्दर्य के जादू से—मुक्ति पायें। सम्पत्ति रूप में अपनी इस अलौकिक प्राप्ति की वे रक्षा ही करना चाहते थे। रंगशाला की यह मानसिक स्थिति मंच पर प्रदर्शित उस दृश्य आगे से चली जा रही थी जिसमें महाराज व मालविका का प्रमद वन के एक कुंज में एकांत मिलन दिखाया गया था। इसकी आधार भूमि का शिलान्यास तो कथित दृश्य के पहले ही मालविका के नृत्यमय संगीत गान के अवसर पर हो चुका था। रंगशाला इस सौन्दर्य रस में मग्न थी कि मंच पर कथावस्तु ने पुनः प्रगति प्रारम्भ की।

प्रमद वन की मालिन मधुरिका महारानी पर अशोक के फूलने के समाचारों की प्रतिक्रिया के सम्बन्ध में विचार कर रही थी कि उसी समय महारानी के रनिवास का कुबड़ा सेवक सारसिक लाख की छाप लगी हुई पिटारी लिए हुए आता दिखाई दिया। पूछने पर उससे उसे मालूम हुआ कि वह अश्वमेध यज्ञ के घोड़े की रक्षा के लिए बनाए गए सेनापति राजकुमार वसुमित्र की रक्षा के लिए प्रतिदिन योग्य ब्राह्मणों को जो चारसौ स्वर्ण मुद्राओं के बराबर धन दक्षिणा में दिया जा रहा है इसे पुरोहितों को वितरण हेतु देने के लिए जा रहा है। उसीसे उसे यह भी मालूम हुआ कि महाराज की विजयिनी सेना ने वीरसेन के सेनापतित्व में विदर्भ के राजा को जीत लिया है और माधवसेन को भी मुक्त करा लिया है। साथ ही दूत के

साथ बहुत-स अनमाल रत्न हाथी घोडे और बहुत अच्छे अच्छ कलाकार नेवक महाराज के पास भेंट भेजे हैं।

वतालिका द्वारा नेपथ्य म महाराज की प्रशस्ति सुनाई देती है। विदूषक गौतम से महाराज को सूचना मिलती है कि महारानी धारिणी न पडिता कौशिकी से मालविका का विवाह योग्य शृगार से सज्जित करवाया है। साथ ही प्रतीहारी स उन्ह सूचना मिलती है कि महारानी धारिणी ने फूल अशोक की शोभा देखने क लिए उन्ह निमन्त्रित किया है जिसमे उत्सव सफल हो। महाराज को महारानी के माथ मालविका की उपस्थिति के समाचार भी इसी प्रतीहारी से मिल जाते हैं। वे अपन गौतम के साथ यथा स्थान आते हैं। यहा विदभ स भेंटस्वरूप आई हुई कला जानने वाली स्त्रिया उनके समक्षपेश होती हैं। महारानी द्वारा मालविका को आज्ञा होती है कि वह कला की साक्षिन रूप म उन दोना म से एक का चयन करे। पर ज्यो ही इन आगन्तुकाओ की दृष्टि मालविका पर पडती है व राजकुमारी "०" स उसका सम्बोधन करती हुई उसके गले मिल जाती ह। इन्ही म उपस्थित व द को मालविका का वास्तविक परिचय मालूम होता है कि वह विदभ कुमार माधवसेन की छोटी बहिन है। इ ही द्वारा यह भेद भी खुलता है कि राजकुमार माधवसेन के मत्री सुमति उसे छिपाकर यहा लाय। घटना का शेप अश सबको परिव्राजिका द्वारा मालूम होता है। उसके अनुसार मत्री सुमति उसक बडे भाई थे। माधवसन की गिरफ्तारी क समय अवसर दख वे उसके तथा मालविका क साथ विदिशा की ओर चल कि राह म डाकुओ ने उन्हें आ घेरा। व्यापारियो के साथ चलने वाले सब रक्षको को उन्होने मार भगाया। उस विपत्ति म शत्रु क आक्रमण से घबराई हुई इस मालविका को बचाने के लिए अपने प्राण देकर सुमति ने अपन स्वामी का भार चुका दिया। डाकू मालविका को ले गय पर वीरसन न उनसे उन्ह छीनकर महारानी क पास भेज दिया। यहा दवी के पास आने पर वे परस्पर पुन मिली।

यही फूले अशोक के सहारे बैठ महाराज न विदभ को दोना भाइयो म विभाजित करा दिया। राजकुमार वसुमित्र की यवनो पर महान् विजय क समाचार भी पत्र द्वारा सबको यहा मिल गय। सब प्रसन्न हुए। इस प्रसन्नता को उसकी चरम सीमा पर पहुचाने क लिए परिव्राजिका की सलाह से

मालविका का हाथ महाराजा अग्निमित्र के हाथ म दे दिया। नेपथ्य स भारत वाक्य सुनाई दिया—

'जब तक अग्नि मित्र राज्य करें तब तक उनकी प्रजा मे किसी प्रकार के उपद्रव आदि न हो—" और यवनिका पतन के साथ ही दर्शक-दर्शिकाए अपने आसनो से उठ बठे।

५

पटाक्षेप होते ही पूर्णिमा वनप्रदेश म अपने कक्ष की ओर चली। रंगशाला पर ही उसके प्रशंसकों ने उसे घेर लिया। साधुवाद की वर्षा होने लगी। प्रबन्धक जी प्रसन्न मुख ने उसे संकेत दे दिया था कि वह असफल नहीं हुई है। उसका उत्साह बढ़ा। वह अपने कक्ष की ओर बढ़ना चाहती थी पर रास्ता नहीं था। उसने देखा कि उस पर दूर ही से फूल बरसाये जा रहे है। अनेकों हर्षोन्मुख चेहरे उसे दिखाई दिये। अनेकों प्रशंसा के शब्द उसके कानों म पड़े। रंग बिरंगे सुगन्धित कोमल सुमनों की वर्षा से कुछ ही क्षणों म उसके खड़े होने की भूमि ढक सी गई। किसी ने फूल बरसाये, माला दी किसी ने गुलदस्ते का उपहार दिया। अनेक रूपों म प्रशंसा उस पर बहाई जा रही थी। उत्तर म मुस्कराकर उसने सिर्फ हाथ जोड़ दिये और मस्तक झुका लिया। प्रशंसकों के झुंड म से उसे बाहर निकालने के लिए आखिर प्रबन्धक किशोरीलाल को आगे बढ़ना ही पड़ा। उसने बढ़कर एक हाथ से पूर्णिमा का हाथ पकड़ लिया और दूसरे हाथ से रास्ता बनाते हुए वह पूर्णिमा को पकड़े पकड़े ही उसके कक्ष की ओर बढ़ गया। उसकी गरजती हुई एक चेतावनी ने द्वारपालों को इस तरह सक्रिय कर दिया कि देखते देखते सारे मनचले व असंदिग्ध व्यक्ति रंगशाला से अलग कर दिये गये। प्रबन्धक महोदय द्वारा पूर्णिमा अपने कक्ष म पहुंचा दी गई।

विशेष वार्तालाप के लिये उपयुक्त समय व अवसर दोनों ही नहीं थे, फिर भी प्रबन्धक महोदय प्राप्त अवसर को निरर्थक नहीं जाने देना चाहते थे। कक्ष म एकान्त प्राप्त करते ही उन्होंने दोनों कन्धे पकड़कर पूर्णिमा को एक पूर्णाकार शीशे के सामने खड़ा कर दिया और स्वयं उसकी पीठ पीछे खड़े होकर मुस्कराने लगे। पूर्णिमा के होठों पर भी उनके इस व्यवहार से मुस्कराहट खेल गई। उसने सुना—

'पूर्णिमा! इस समय तुम पूर्णिमा नहीं हो। यदि बुरा न मानो तो हृदय

की एक साध पूरी कर लू।"

"कहिये ?"

'इतना समय कहा है मालविके।' और साथ ही उसने पूर्णिमा को क्षणएक के लिए बाहा मे जकडकर उसके होठो व कपोलो पर चुम्बनो की बौछार-सी लगा दी। पूर्णिमा को आपत्ति अवश्य होनी चाहिए थी, परन्तु प्रबधक ने उसके लिए कोई समय ही नही दिया। पूर्णिमा ने अपने आपको छुडाया, उसके पहले तो वह उसके अधर का अपना आखिरी विलबित चुबन ले चुका था।

'छि। यह क्या ?"

'अब कुछ नही पूर्णिमा। मालविका के हुस्नो-शवाब ने मेरी हालत ही खराब कर दी थी। अब सब ठीक है। कहिये चाय भेजू या काफी ?"

मुझे कुछ नही चाहिये। मैं जाना चाहती हू।

यह कसे हो सकता है ?'

इतने म ही कक्ष के द्वार पर खट-खट की आवाज हुई। उत्तर मिला— आ जाओ। पाशाकी अन्दर आ गया। कक्ष के द्वार पर अनेक व्यक्ति खडे थे। पूर्णिमा के नाम की सकेत पटिया ने उन्हे वही खडा कर दिया था। 'प्रवेश निषेध' के विद्युतमय लाल सकेत से वे और आगे बढने म असमर्थ थे। पाशाकी के अन्दर प्रवेश करने के बाद प्रबधक महोदय पूर्णिमा के कक्ष से बाहर निकले। उन्होने तुरन्त अपने विशेष कर्मचारी को अपने कमरे मे चाय के प्रबन्ध की आज्ञा दी। पुन प्रवेश के लिए उन्होने कक्ष के द्वार को खटखटाया, परन्तु उत्तर मिला —

'क्षमा कीजिये। चेंज कर रही हू।'

"कोई बात नही। चाय यहीं भेज दू या आप आ रही हैं ?"

अच्छा है, यही भेज दीजिये।

"फिर भी आपको बिना मिले जाना नही है।'

"ठीक।"

कितनी देर लगेगी ?'

/ साधारण।

'बहुत ठीक।—मैं आदमी भेज दूगा।'

सम्मान रा समथन किया।

रात्रि बीत रही थी। प्रबन्धक महोन्यन उपस्थित व द को उनके कला प्रेम व लिए अनेक धयवाद दिये और उनसे आज्ञा लेकर वह पूर्णिमा को साथ लेकर रगभूमि की सीढिया उतर गया।

'रगभूमि के बाहर अब भी पर्याप्त भीड थी। रह रहकर पूर्णिमा का नाम जोर जोर से पुकारा जा रहा था। क्षण-क्षण म आवाजें आ रही थी कि पूर्णिमा से साक्षात किये बिना वे नही हटेंगे। प्रबन्धक और पूर्णिमा दोना ने ही सुना कि एक मिनट के लिए ही सही पर पूर्णिमा का उनके सामने आकर एक बार खडा होना जरूरी है। दोनो ने ही महसूस किया कि जनता की इस आज्ञा के पालन किए बिना उन्ह रास्ता नही मिल सकता। क्षण भर की अपनी असमजस की स्थिति म उन्होने सुना—

कला केवल धनवानो की वस्तु नही है—कलाकार से सम्पक बढाने का केवल उन्ह ही अधिकार नही है।'

प्रबन्धक महोन्य को प्रस्तुत परिस्थिति म अपना निणय लेन म देरी न लगा। उसने एक उच्च स्थान पर खडे होकर जोर से पुकारा—

सुश्री पूर्णिमा आपका अभिनन्दन स्वीकार करने के लिए उपस्थित है। उसके लिए रास्ता और स्थान चाहिए।

कुछ ही क्षणो म तुमुल कोलाहल के बीच रास्ता और स्थान खाली हो गया। पूर्णिमा एक उच्च स्थान पर प्रब धक क आदेश स खडी हो गई। हाथ जोडकर उसने उनके तुमुल जयनाद और अभिनन्दन का उत्तर दिया। अब तक उसकी मोटर रगभूमि की पडियो के पास आ लगी थी। कई कमरे इस बीच क्लिक कर गय। सारा वातावरण पूर्णिमा के नाम और जयसे गुजित हो उठा। इस घोष और गुजन म ज्यो ही उतरकर वह अपनी कार मे बैठी चालक उन तज रफ्तार से गन्तव्य पथ पर ले चला।

पूर्णिमा अपने बगले पर पहुची उस समय तक काफी रात बीत चुकी थी। यहा पहुचने के बाद उसने सोने म और विलम्ब करना मुनासिब नही समझा और यथाशीघ्र वह अपने सोने के कमरे म चली गई। परन्तु वस्त्र उतारने और सोने की व्यवस्था करने म उसने जितनी जल्दी की उतनी जल्दी उसे नीद नही आई। अपनी सफलता प्रशसा व प्रभुत्व के दृश्य रह

रहकर उसके मानस पट पर चक्कर लगान लगे। साधुवाद और जयनाद के नार बराबर उसकी श्रवणेन्द्रिया को कपित करते रह। अपनी ही इस कहानी को देखते सुनते रात्रि के अन्तिम पहर मे आखिर निद्रादेवी ने उसे अपनी गोद म आश्रय दे दिया।

टेलीफोन की घटी की एक विलम्बित टण टणात न सवेर पूर्णिमा को अपनी नीद मे जगाया। सेविका ने उसके जागने पर समाचार दिय कि सूर्योदय के पहल से ही अनेको फान उसके नाम आ चुके है। अधिक अभ्यस्त न हाने पर भी अब वह इन सन्देशा का महत्त्व समझ सकने मे समथ थी। उसने राधा को आज्ञा दी कि जब तक वह चाय न पी ल किसी सन्देश को ग्रहण ही न किया जाय। एक किनारे पडा फोन क्षणा के विराम से बार-बार बजता रहा मगर किसी न उस पर उपस्थित होकर बात करन की चेष्टा तक न की।

राधा ने कुछ ही क्षणा म पूर्णिमा के लिए चाय बना दी और उसे उसके आगे लाकर रख दिया। दो प्याले चाय गले से नीचे उतारने के बाद वह पलग स उतरी और अपने आकार के एक शीश के सामने आकर खडी हो गई। उसने नजर भरकर ऊपर से नीचे तक अपनेको देखा। एक-दो अगडाई ली और फिर मुस्कराकर हाथ नीचे गिरा लिए। रह रहकर अब भी घण्टी की आवाज उसक कानो म आ रही थी। उसन राधा को पुकारा। बोली—

'एक कापी और पैंसिल ले लो। फोन पर जो जो साहब बोलें व बात कहें यह उस पर नोट कर लेना। मुझे स्नान आदि से निवत्त होने मे अभी एक घण्टा लगगा। ऐसा न हो कोई परिचित बुरा मान ले।' और इतना कह वह अपने नित्य-नमित्तिक कर्मों म सलग्न हा गई। राधा यथा आना फोन के पास सन्देश ग्रहण करने बैठ गई और पूर्णिमा निवत्त हाकर आई तब तक उसने उसके लिए अच्छे खासे सन्देश इकटठे कर लिए। राधा की मुस्कराहट स ही पूर्णिमा समझ गई कि सन्देश काफी दिलचस्प हैं। अपनी प्रतिक्रिया को तो पूर्णिमा ने हसकर प्रदर्शित कर दिया। उसन राधा का आज्ञा दी कि फोन का सम्बन्ध उसके बठन के कमरे मे लगे फोन से सयोजित कर दिया जाय।

वह अपने बैठने के सुसज्जित कमरे में आकर एक सोफे पर बैठ गई और पास ही पड़ी मेज पर पड़े अखबारों को देखने लगी। अब तक फोन पर सीधा सम्बन्ध उसके इस कमरे में रखे फोन से हो गया था। उसने मुश्किल से एक अखबार के पांच सात पन्ने इधर उधर उलटे-पलटे होंगे कि विलम्बित घण्टी की पुकार ने उसे पुनः अपनी ओर आकर्षित करना प्रारम्भ कर दिया। उसने पास ही रखे फोन को उठा लिया। बोली—

'जी?' उसने सुना।

"देवी पूर्णिमा से बात करना चाहता हूं।

पूर्णिमा ही हूं। फरमाइये।' वार्ता का सिलसिला शुरू हो गया।

'मैं एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात करना चाहता हूं।

"फरमाइये।'

एक प्रस्ताव है।

जी।'

'बहुत महत्त्वपूर्ण।

"जी।

'उससे मेरे और आपके जीवन का सम्बन्ध है।'

'आगे।

'आपको मंजूर है?

'कहिये न।

"सबसे पहले मैं आपको आपके रात के प्रदर्शन के लिए बधाई देता हूं।'

"शुक्रिया।

'मुझे अपनी बात कहने के लिए समय चाहिए।

'अभी समय कम है क्या?

'एकान्त भी चाहिए।

'यह भी तो है।

साक्षात्कार अधिक अपेक्षित है।

पूर्णिमा के चेहरे पर मुस्कराहट प्रहसित हो उठी। ऐसे चरित्र उसके जीवन में शायद कई आ चुके थे। उनके लिए ऐसी शब्दावलि भी कोई नई

नहीं थी और न विशेष महत्त्व ही रखती थी। उसने उत्तर दिया—

"जनाब की बात का सिर पाँव तो कुछ जानूँ।"

'मैं एक प्रख्यात उद्योगपति का पुत्र हूँ।'

"जी।'

धनवान हूँ, जवान हूँ, शिक्षित हूँ।"

"जी।

'अच्छा खानदान है।

"जी।

'चरित्रवान हूँ।

'बहुत खूब।

और यह सब होते हुए भी अभी तक अविवाहित हूँ।

'आगे।

'मैंने अभी इसी डाक से एक पत्र और अपना पूरे आकार का एक चित्र आपकी सेवा में भेजा है।"

'शुक्रिया।

मेरे दिल का सिंहासन आज भी खाली है।'

"खाली स्थान में अक्सर शैतान का प्रवेश हो जाता है, जनाब।"

उसी का डर है देवीजी।"

'तो।

'उस में आज किसी को बिठा देना चाहता हूँ।

बिठाइए न फिर।

आपकी सहायता चाहिए।'

'जी।'

"मंजूर है आपको?

जी?'

मगर दूसरे ही क्षण पूर्णिमा ने सुना—

'बात हुई या नहीं मैडम?' पूर्णिमा आपरेटर की आवाज पहचान गई। उसने उत्तर दिया शौक से बन्द फरमा दीजिए। उसने फोन रख दिया और खूब जोर से हँसने लगी। मगर, दूसरे ही क्षण पुन: घण्टी बजी।

उसने फोन उठाया । सुना—' कृपया सुनिये । बन्द कर देने पर क्या-क्या सुनना पडता है । जी । पूर्णिमा ने सुना—

जी के बच्चे ! मेरे जीवन का सवाल है । चलती बात को बीच म काट देने का तुम्हे क्या अधिकार है ? मैं शिकायत करूगा । स्वतन्त्रता के युग म यह हरकत बदाश्त नही की जा सकती । हजारो रुपयेहर साल हम सरकार को देते हैं । मगर इसलिए नही कि हमारे सारे काम खराब हो जायें, हम बर्बाद हो जायें । मुझे पूर्णिमा चाहिए । अभी इसी वक्त । मैं और कुछ नही जानता । पूर्णिमा स बात कराओ । सुना या नही ?

पूर्णिमा ने परिस्थिति व पूर्ववक्ता के स्वर को पहचान लिया । उसने स्वर सयत करके कहा—

जी । यह पूर्णिमा है ।

बातचीत म रुकावट के लिए क्षमा प्रार्थी हू । ये 'आपरेटस बड बेवकूफ और बत्तमीज होते हैं । पर एक ही डाट काम कर गई । हा, तो मैं समझू कि आपका स्वीकार है ।'

"आप स्पष्ट नही है । मैं कुछ भी नही समझी ।

'मेरा स्वर स्पष्ट नहीं है ?

'आपकी बात स्पष्ट नही है ।

म मिलना चाहता हू । मुझे मुलाकात के लिए समय दीजिये । अभी तो इतना ही कहना चाहता हू कि कल रात्रि के आपके प्रदर्शन को देखने के बाद मे मेरी हालत अच्छी नही है । एक क्षण के लिए भी मुझे नींद नहीं आई है । मैं प्रेम करने लग गया हू । हृदय के खाली सिंहासन पर

बात समाप्त हुइ या नही मडम ?

मुझे यह शख्स नही चाहिए । कृपया कह दीजिये कि नम्बर 'इगेज्ड है ।'

पूर्णिमा ने फोन रख दिया । उसे फिर हसी आ गई । वह उठकर खडी हो गई और किसी विचारधारा म स्मित रेखाओ को मुह पर धारण किये कमरे मे ही इधर उधर घूमने लगी । बठने के इस कमरे से बगले के प्राय सभी कमरो म प्रवेश किया जा सकता था—यानि यहा सर्वान्तर प्रवेश की [illegible] व्यवस्था थी । घूमते घूमते उसने अपने शयन-कक्ष की ओर पाव

बढा दिये और सहज भाव मे शीशे के सामने जाकर खडी हो गई। नारी का रमणी रूप अब उसके सामने था। इधर कई दिनो म उसकी यह आदत हो गई थी कि जब भी कोई विचार या घटनाए उसके मस्तिष्क म चक्कर लगाने लगते वह उनका समाधान शीशे म अपनी ही प्रतिछाया से विमश करके करने की चेष्टा करती। एक लम्बे अरसे से उसका यह अनुभव था कि पुरुष नारी के किस रूप पर प्रभावित होकर उसस क्या क्या चर्चा करते हैं। अभी अन्तर इतना ही था कि वह एक प्रसिद्धि के विशिष्ट स्तर पर थी और इसलिए विशिष्ट पुरुषो का ही एक असाधारण स्तर पर उससे वार्तालाप होता था। यह उससे किसी रूप म छिपा हुआ नही था कि विषय याचना वही पुरातन है। सनातन कामना का परिवर्तित रूपमात्र है।

पूर्णिमा के लिए यह अनुमान करना सहज था कि कम से कम आज का दिन उसके लिए बहुत व्यस्त होगा। परिचित अपरिचित, गम्भीर मनचले—सभी बधाई के बहाने उसके यहा आने और औपचारिक चर्चा करने का अधिकार ले सकते थे। यह मानते हुए अपनी मानसिक शकाओ का समाधान तुरन्त अपने मन म कर लिया और अविलम्ब ही पुन वह अपने बठने के कमरे मे आ गई।

अब तक अनेक व्यक्ति उसके द्वार पर उपस्थित हो गये थे। उसने अपने कमरे का दरवाजा खोल दिया और एक प्रहसित अभिवादन के साथ समस्त उपस्थित वग को अन्दर आने के लिए आमन्त्रित किया। वह जानती थी कि इस समय उनमे स किसी का भी कोइ विशेष काम नही हो सकता था और व सब उसस परिचय स्थापित करने अथवा पूर्ण परिचय की कडी को और सुदृढ करने के लिए ही आये है। पूर्णिमा से साक्षात होते ही किसी ने बधाई, किसी ने गुलदस्ता किसी ने अखबार और किसी ने कुछ उसको भेंट करने के लिए आगे बढाये। सबके बठने बिठाने क बाद पूर्णिमा बोला—

'आप सबने बडी तकलीफ फरमाई।'

एक बोला "यह तो हमारा फज था।' गुलदस्ता लाने वाला बोला—

सिवाय चन्द फूलो के देवी के लिए हमे तो और कोई सुयोग्य भेंट शहर म दिखाई ही नही दी। इसे कबूल फरमाइये।

क्या बात कही है। भई बाजी मार ले गये। क्या शायराना बात कही है।'

अपने रात के प्रदर्शन के लिए देवी धन्यवाद की पात्र हैं। मैं अपने चन्द साथियों के साथ प्रेस गैलरी में था। निमन्त्रण मिला तब तक तो हम कम-से-कम मैं यही सोचता था कि आज यहाँ कालीदास की मिट्टी पलीत होनी है। रंगशाला पर पहुँचने पर कुछ कुछ महसूस करने लगे कि कुछ और बात है। बाह्य आकर्षण ही हमारे विचारों में कुछ तो परिवर्तन ले आया था। हम एक अच्छे और कलापूर्ण प्रदर्शन की आशा रख सकते थे। रंगशाला में प्रवेश करते-करते हमारी आशा और भी सुदृढ़ हो गई। प्रदर्शन प्रारम्भ हुआ। मंच पर देवी के आने तक बराबर एक आकर्षक निलम्बन कायम रहा। जो भूमिका देवी के मंच पर प्रवेश के लिए स्थापित की गई थी बहुत कलापूर्ण थी। देवी आई तो महसूस हुआ कि स्वयं सरस्वती अवतरित हुई है। यौवन सौंदर्य कला का एक अभिनव संगम देवी के उस रूप में प्रस्फुटित हो उठा। दर्शक स्तब्ध थे। प्रतियोगिता के दृश्य में तो हर वस्तु अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई। देवीजी! सच बात तो यह है कि हमारे उस समय के हर भाव को हम पूर्णतया शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकते। इस समय भी देवी के सामने अपने भावों को, उस स्वर्गीय आनन्द को पूर्णतया व्यक्त करने में असमर्थ हूँ और एक शर्म महसूस करता हूँ कि क्यों मैंने अपने जिम्मे अयोग्य होते हुए भी देवी के अभिवादन का कर्त्तव्य ले लिया। इन पत्र पत्रिकाओं की चन्द रचनाएँ कुछ अंशों में हमारे अभिवादन की प्रतीक हैं। इन्हें स्वीकार फरमाएँ।

और यह कहते हुए वक्ता ने कुछ पत्र पत्रिकाओं की प्रतियाँ पूर्णिमा के हाथ में रख दीं। पूर्णिमा के मुँह से शब्द निकले—

किन शब्दों में आपका शुक्रिया अदा करूँ समझ में नहीं आता। यह सब तो प्रबन्धकों का प्रयास था जो कुछ अंशों में सफल हुआ। आपकी मेहरबानी कि आपने हम सबको नवाजा। आपने जो कुछ भी लिखा उसके लिये धन्यवाद! खूबी तो महाकवि कालीदास की है जिसने हम सबको आप तक पहुँचाने का अवसर दिया। यदि आप सबकी मदद रही तो हम लोग भी दुनिया में रहने लायक जीने लायक हो जायेंगे। मेरा तो यह पहला

ही प्रयास है कि '

और इस प्रथम प्रयास ने ही जादू का सा असर किया है। जादू वह जो सर पर चक्कर बोलता हो। आपके प्रथम प्रदर्शन के बाद ही सारे शहर में आपकी शोहरत का डंका बज उठा है। स्कूल, कालेज, खेल के मैदान, घूमने के उपवन, गली, बाजार, घर—कोई जगह ऐसी नहीं है जो आपके नाम और शोहरत से गुंजित न हुई हो। रात के प्रदर्शन के बाद कम्पनी की विज्ञप्तियों और विज्ञापनों में एक नये अर्थ का संचार हो गया है। स्कूल के बच्चों ने आपकी तस्वीरें दीवारों से उतार उतारकर उनसे अपनी जेबें भर ली हैं। मैं स्वयं देखकर आया हूं कि 'फाटोग्राफर्स' व तस्वीर फरोशों का दुकानों पर आपकी तसवीरों के लिए 'क्यू' लग रहे हैं।'

एक ने पूछा—'आपने भी कोई तस्वीर लेने की कोई कोशिश की ?

'क्या नहीं। अवश्य। यह देखिये। और इतना कहते हुए उत्तरदाता ने अपनी जेब से सचमुच ही एक पूर्णिमा की फोटो निकालकर प्रदर्शित कर दी। वह आगे बोला—

'परन्तु देवीजी इसकी तब तक कोई कीमत नहीं है जब तक इस पर आपके 'आटोग्राफ' न हो जायें। स्कूल, कॉलिज के छात्र-छात्राएं आपके प्रशंसकों में सबसे अधिक हैं। उन्हें जैसे अपने पथ प्रदर्शन के लिये कोई अद्वितीय 'हीरोइन' मिल गई है। शहर की आम मुख्य सड़कों पर आज कल में ही आप स्वयं देखेंगी कि अपसरा और सम्पन्न परिवार की बहू-बेटियां आपकी रचना में ही अपने-आपको बनाकर बाहर निकलेंगी। यदि हमारे में से किसी को आज ही शहर के 'फाइनेबल क्लबों' में जाने का अवसर मिला तो मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूं कि हम वहां देवी द्वारा अभिनीत मालविका को रूप-सज्जा में अनेक औरतों को पायेंगे। शहर के छविस्तानों में कॉलिजों में, विहार-स्थलों में, होटलों व प्रमोदगृहों में ही नहीं, बल्कि सम्पन्न परिवारों के सुरुचिपूर्ण सजे ड्राइंग रूम्स में भी कुछ दिनों में देवी पूर्णिमा द्वारा प्रदर्शित मालविका की प्रतिरूपिकाएं हमें देखने को मिलेंगी। मुझे निश्चय है कि देवी द्वारा चलाया हुआ मालविका 'फैशन' अब फले फूले बिना नहीं रहेगा।'

'आप भी क्या बात करते हैं ?'

"सच कहता हू देवीजी ! युवक और विद्यार्थी सगठनो का इन्हा कुछ वर्षों म सचालक होने के नाते मुझे इन सब स्थानो का अच्छा-खासा अनुभव है। मैं जानता हू कि किस तरह फशन शुरू होता है और फलता है। आप स्वय अनुभव करेगी कि किस तरह आपकी अभिनीत भूमिका की प्रति मूर्तिया सहज भाव से बहुत कम अरसे म शहर म विस्तत रूप म फली हुई मिलेंगी। देखते देखते बहुत जल्दी मालविका के केश विन्यास का चलन शुरू हो जायगा। मालविका की पोशाको से डसस और आउट फिट्स की 'ना विण्डोज सजी हुई नजर आयेंगी। नारी के वे अग जिन्हें आपने छिपाया नही प्रदर्शित न करना आधुनिक सभ्य समाज के लिये एक हेय और अरुचिपूर्ण स्थिति समझी जायगी। सचमुच आपने सभ्यता को एक नया मोड़ दिया है। आधुनिक युग वर्षों आपका इसके लिए आभारी रहगा। युवक और विद्यार्थी सघो के प्रतिनिधि की हैसियत से मैं आपका आपकी अभिनव कला के लिए मुबारिकवाद पेश करने हाजिर हुआ हू। साथ ही समय चाहता ह कि आप हमारे सघ कायालय म चलकर हमारे अभिनदन का स्वीकार कर हम अनुग्रहीत करें।

आपने महरवानी फरमाई उसके लिये फिलहाल माफी चाहती हू। मेरा समय अपना नही है। कही जाने के सिलसिले मे मैं स्वतन्त्र भी नहा हू। मेरी मजबूरी को आप बुरा नही मानग।

एक क्षण के लिय अपनी ओर देवी की तवज्जह चाहता हू। अधिक समय नही लूगा। मैं हमारे देश के सबसे बडे रूप सज्जा सम्बन्धी कारखाना का प्रतिनिधि हू। हमारे विज्ञापन विभाग के प्रबन्धको ने मुझे आज्ञा दी है कि देवी की सेवा म हमारे कारखाने की कुछ प्रसिद्ध प्रसाधन वस्तुए प्रस्तुत करू। बाहर पडे हुए बक्सो म साबुन तेल, पाउडर क्रीम, काजल, लिपस्टिक आदि कई ए०-वन क्वालिटी की चीजें हैं। आप इन्ह कबूल फरमाइये। साथ म य कुछ सर्टिफिकेट्स लाया हू। इन पर अपने आटो ग्राफस देकर कम्पनी को कृतार्थ करें। और यह कहते हुए उसने कुछ कागज पूर्णिमा के आगे कर दिये और अपना पेन खोलकर उसके हाथ मे थमा दिया। पूर्णिमा न उठ पढा। सम्बन्धित प्रतिनिधि बोला— कोई विशेष बात नहा है देवीजी। आदान प्रदान की रस्म मात्र है। आपके नाम और

त्र के साथ इन वस्तुओं के जुड जाने से इनकी कीमत बढ जायगी। आपकी शोहरत तो होगी ही, हमारी कम्पनी की निर्मित वस्तुओं में एक और नया आकर्षण आ जायगा। अपने दस्तखत देने में आपको विशेष विचार की आवश्यकता नहीं है।' पूर्णिमा ने इस प्रतिनिधि द्वारा आगे बढाये हुए कागजों पर दस्तखत कर दिये। उसने सुना—"अनेक अनेक धन्यवाद! —मुझे अब आज्ञा हो।' और यह कहते-कहते उसने सभालकर उन पत्रों को अपने थैले में रख लिया। परन्तु पूर्णिमा बोली—' मेरी प्रार्थना है कि आप सब लोग चाय आने तक ठहरें।" और यह कहते हुए वह कुछ देर के लिए अपने भीतरी कमरे में चली गई।

एक दो व्यक्ति अभी एसे और बैठे थे जिन्होंने अपने आने का मन्तव्य व्यक्त नहीं किया था। पूर्णिमा के भीतर चले जाने के बाद इन आगन्तुकों की पारस्परिक बातचीत से उन सबको यह स्पष्ट हो गया कि वे किसी स्थानीय कला सस्थान के सदस्य हैं और पूर्णिमा का मुबारिकबाद पेश करने और अपने सस्थान की माननीय सरक्षिका बनाने की प्रार्थना करने आये थे। पूर्णिमा के पुन आते ही इनमें से एक अपने स्थान पर खडा हो गया। कुछ अपने सस्थान का साहित्य पूर्णिमा को पेश करते हुए बोला—

'आप इस थोडे से साहित्य को अपने एकान्त समय में पढने की कृपा करें। हमारे कला-सस्थान की उत्पत्ति, प्रगति व स्थिति के ये कुछ 'पुष्प परिचायक हैं। हमारा सदैव यह प्रयास रहा है कि नगर का कोई भी महान कलाकार हमारे सस्थान से दूर न रहे। विभिन्न कलाओं के उपासकों की सगम-स्थली हमारी यह सस्था रही है। आज तक हमारा यह सौभाग्य रहा है कि किसी भी महान कलाकार ने हमारा आहार अल्पाहार स्वल्पाहार स्वागत अभिनन्दन अस्वीकार नहीं किया। बल्कि हमारे गुण-ग्राहियों, कला प्रेमियों व प्रशसकों से मिलकर सबको असीमित खुशी हुई है।' अपने दो अन्य साथियों की ओर सकेत करते हुए यह वक्ता बोला—' आप मेरे साथ हैं। हमारी सस्था के सचालक सदस्य हैं। इन्हीं के अथ-सहयोग से हमारा सस्थान अपनी स्थिति को सभाले हुए है, जीवित व फलित है।'

'आप सबसे मिलकर बडी खुशी हुई। तशरीफ रखिये।"

अब तक सेविका चाय का सेट ले आई थी। पूर्णिमा ने चाय बनाकर

एक एक को अपने हाथ से पकड़ाई। सब पीने लगे। शांति म चुपचाप खाना पीना आधुनिक सभ्यता की निशानी नहीं है। परिस्थिति को आधुनिकता म परिवर्तित करने के लिए व्यापारिक फर्म के प्रतिनिधि महोदय बोले—

"जिस शिष्टता व आत्मीयता मे देवी ने हमारा सम्मान किया है वह हमारे लिए जीवन की एक याद रहेगी।'

"बिलकुल ठीक फरमाया आपने। दूसरा बोला।

"सम्मान तो मुझे दिया है आप सबने। चाय के पानी की आप सबको कोई कमी नहा है यह मैं अच्छी तरह जान सकती हू। आपका शुक्रिया कि आपने मुझे कबूल फरमाया।'

अब तक चाय पी जा चुकी थी। आगन्तुको की उठने की इच्छा नहीं हो रही थी, मगर उन्होने देखा कि कुछ नए व्यक्ति और आ रहे ह। पुन मिलने की साध व्यक्त करते हुए एक औपचारिक सम्मान की अभिव्यक्ति के साथ वे उठकर चल दिये।

६

"बधाई है।

अब किस बात की ?'

'सुबह-सुबह बधाइयां बटोरने की।'

'यह तो आपकी मेहरबानी है।"

ऐसा अवसर तो हम खुदा के मेहरबान होने पर भी नहीं मिला।

'क्या मतलब ?'

"इतनी बडी कलाकार साधारण अर्थ को भी नही समझती।'

"आपके मुह से कभी साधारण बात निकलती भी है ?"

'मैंने कहा वह तो साधारण गृहस्थ का रात दिन का क़िस्सा है।"

यानी।'

रात दिन घरो म बच्चे पैदा नही होते।

"ओह ! पूर्णिमा हसने लगी। मनेजर साहब बोले—

'खुदा जब बहुत ज्यादा मेहरबान होता है तब वह गृहस्थ मे बच्चा देता है। परिवार वाले, परिचित, अपरिचित भी सब बधाई के लिये आते हैं मगर इस तरह इतनी बडी तादाद म दौडे हुए नही। उठने से पहले ही आज तो जन मारे शहर ने ही नाक म दम कर दिया। यहा आया तो वही हाल यहा देखता हू। देवी पूर्णिमा ! उम्र भर नाटक कम्पनिया चलाता आ रहा हू। मगर कल रात जो सफलता मिली है वह जीवन को एक सुन्दर याद बनी रहगी। और उसका सब श्रेय मैं आपको देता हू।'

अपना स्थिति तो मैं जानती हू। श्रेय आपको है या उस ईश्वर का।

'ईश्वर यदि यह यौवन, रूप, लावण्य, आकर्षण नही देता तो मैं बिचारी किस बाग की मूली था। खर ! अब इन बातो म अधिक उलझने की जरूरत नही है। कहिये प्रोग्राम क्या है ? '

' मैंने अपना प्रोग्राम बनाया ही कब है ?

'शायद आज बाई बना गया हो।

'आनेवाला म बाई मनेजर साहब नही थे।'

'आह! और य सब क्या हैं। पड़े हुए डिब्बा की ओर इशारा था।

'ताहफ! उपहार।'

'फिर हमारा गुजर कसे होगा?'

'य आप ले जाइय।

और आपक तो और आ जायेंगे।'

न थे फिर भी काम तो चलता ही था।

'इन सबको अब हमारी तरफ म समझ ला।

"मैं तो पहले भी आपकी ही मेहरबानी समझती थी।

यह बहुत अच्छा। चाय उन लोगो के लिये ही थी या हमारे लिय भी कुछ बची है?

'आपक हुक्म की देरी थी। पूर्णिमा उठी मगर उसका अचल पकड़ते हुए मनेजर महोदय बोले— तुम्हारी राधा को आवाज दे लो। वही ल आयेगी। क्षणभर विराम कर मनजर किशोरीलाल बोले—

सम्भव यही है कि आज मडम को अपनी डाक से फुरसत न मिल। अब यह पत्र पत्रिकाओ का सिलसिला चलेगा। इन पर विशेष ध्यान नहीं देना चाहिये। न जाने कौन कौन किस किस मतलब स लिखते हैं। कुछ हम लिखवाते हैं। कुछ हमसे आशा रखते हुए लिखते हैं। पत्र पत्रिकाओ के पन्न भरने के लिए भी कुछ लिखा जाता है। कुछ हमसे कुछ आपसे सपक बढाने के लिय भी लिखेंगे। यह सिलसिला तो अब चलता रहेगा।

'मुझे क्या करना है?'

'पहले चाय पिलानी है। यह लो वह तो आ भी गई। इसे बनाओ।' पूर्णिमा चाय बनाने लगी।

"मैं जो कहने के लिये आया था वह यह था कि मडम को अब चाहे जिस व्यक्ति अथवा सस्था का आमन्त्रण निमन्त्रण नहीं स्वीकार करना चाहिय। मेरे कहने का मतलब यही है कि उचित अनुचित का निर्णय इस सम्बन्ध म मडम को नहीं बल्कि इस खाकसार को करना है। स्पशल सीट पर बठे हुए कुछ जवान कुछ बुड्ढे से एक खूबसूरत व्यक्ति पर तुम्हारी

नजर वल रात जरूर पडी होगी। इण्टरवल क बाद से ही मर पाछ पड गया कि तुम्हार से उमकी मुलाकात कराऊ। वस वडा अच्छा आदमी है। वही जिसने अपने हाथ की अगूठी खोलकर तुम्हारी अगुली मे पहना दी थी। अच्छा-खासा धनवान है। काफी खर्च खाऊ है। नौकर चाकरा की पूरी बटेलियन साथ लेकर चलता है। अकेला मुलाकात करन नही आएगा। बिना कुछ दिये वापस नही जायगा। यह उसकी आदत है। हम उसस बनाकर रखनी है। बिगाडनी बिलकुल नही है। नाटक सिनमा के धन्धा म सौभाग्य हवा और पानी की लहरा पर नाचता है। उनक नाचे, आग पीछ कोई ठोस जमीन नही होती। जो बात इस धन्धे के सम्बन्ध म सत्य है वही इससे सम्बन्धित व्यक्तिया पर भी लागू होती है। पूर्णिमा न चाय का प्याला मनेजर महादय को पकडा दिया। वह ध्यानपूवक उसकी बात सुन रही थी। उसकी बाता न एक गम्भीर छाया उसके मुह पर ला दी। दो एक 'सिप चाय के प्याले से लेने के बाद वह पुन बाला—

"यौवन सौदय रूप, लावण्य, सरल और मधुर स्वभाव सब प्रकृति की दन है परन्तु प्रकृति ने इन्हें जिनका दिया है उनके लिय स्थायी नही बनाया। प्रकृति के अलावा और भी सामाजिक राजनतिक, आर्थिक आदि अनको परिस्थितिया हैं जो प्रकृति की इन खूबिया का प्रभावित करती है। इसलिये बुद्धिमानी इसीम है कि व्यक्ति का जब सुअवसर मिल वह उसका अपने भविष्य के लिये सदुपयाग कर। मैंने पहले भी सकेत किया है और अब भी कहता हू कि देवी को अपने सुन्दर स्वास्थ्य और सरल स्वभाव की अपने भविष्य के दिनो के लिए सुरक्षा करनी है।

श्रीमान का सहयाग हो फिर न !"

"हमारे लिए तो सहयोग देना अनिवाय है। कारण हमारा स्वाथ तो आपके व्यक्तित्व के साथ सयोजित है। मनजर महोदय ने चाय क प्यारा को खाली करत हुए उसे मेज पर रख दिया। वे बोले—

'मैं 'फोटोग्राफर को कहकर आया हू कि वह कुछ नये चित्र आपके आज ही तयार कर द। उन पर आपके दस्तखत हो जायेंगे। फिजूल बाटने नही हैं फिर भी होगा वितरण ही खास-खास जगह। अभी ग्यारह बजे हैं। आप तयार हो जाए। एक बजे रिहसल है। दूसरा-तीसरा खेल हमन और

एनाउस कर दिया है। सच बहुत है, पूर्णिमा देवी ! जब तक हम और आप सब मिलके कोशिश नहीं करेंगे तो काम नहीं चलेगा। हम पूजी को आकर्षित करना है। कहीं से आए कोई भी लाए। आई हुई को ठुकराता नहीं है। बल्कि अपने काम म लगा है। ये बातें 'मैडम' तुम्हें इसलिए कहता हूँ कि तुम मेरे संकेतों को स्पष्ट समझ सको मेरे प्रचालन का अध्ययन कर सको।

अभी य बातें हो ही रही थी कि डाकिये ने कुछ पत्र पूर्णिमा के नाम से मनेजर किशोरीलाल के हाथ म पकड़ा दिये। डाकिये के कमरे से बाहर चले जाने के बाद मनेजर महोदय ने पूछा—

'जानती हो इनमें क्या है ?'

'कैसे कोई जान सकता है ?'

'यही तो बात है !'

'फिर बताइये पहले खोलिये नहीं। सारे पत्रों पर अपनी दोनों हथेलियाँ रखते हुए कहा—

बिलकुल नहीं। एक बात इन सबमें है और वह यह है कि इन प्रत्येक का लेखक किसी न किसी बहाने तुमसे से कोई निकट का सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है। शादी का प्रस्ताव हो सकता है बहन भाई के रिश्ते की प्रार्थना हो सकती है गुरु शिष्य के सम्बन्ध की कामना का होना भी संभव है कलाकार होने के नाते अथवा कला प्रेमी की हैसियत से मैत्री के सुझाव को मनवाने का भी स्थान दिया जा सकता है मेहमान अथवा मेजबान बनने-बनाने की इल्तिजा इनमें हो सकती है। कुछ दुनिया में ऐसे भी व्यक्ति होते हैं जो आलोचना और समालोचना से अपनी ओर दुनिया का ध्यान आकर्षित करते हैं। उनका भी इन पत्र-लेखकों में होना असंभव नहीं है। ये एसे व्यक्ति हैं जिनको चाहे आप सम्मान न करो इनसे बल्कि घृणा ही करो परन्तु इन्हें किसी कीमत पर भुलाया नहीं जा सकता। इनका एक अपना व्यक्तित्व होता है जिसके अस्तित्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती। मैंने इन पत्रों की ओर आने जाने वालों की भी एक सीमा रखी है। उनका एक दायरा खींच लिया है जिसके बाहर आपके नाम निमन्त्रण का मजमून होगा सकना। कहिये अब इजाजत है मानने की ?

'जी पढने का कष्ट भी अब आप ही कीजिये।'

मनेजर महोदय पत्र खालते गय और साथ साथ थोडा थोडा पढकर पूर्णिमा को देते गय। पूर्णिमा ने पढा— सौदय और यौवन की दुनिया को असत्य मानने वाला को, शायद आप-जैसी रमणी के दशन नहीं हुए। मेरी मायता है कि यदि ऐसे लागा से आपका साक्षात्कार हा जाता तो वे अपनी बहुत बडी मिथ्या धारणा से मुक्ति पा जात। पूर्णिमा के होठा पर स्मिति की रेखाए एक विशेष अध्ययन म दौडन लगी। पत्र को पढने के बाद वह एक ओर रखती गई। यह वह न कर सकी कि किसी दिलचस्प वाक्य का दोहराये बिना उस पत्र को अलग रख द। दूसरा पत्र पढते पढते उसके मुह से शब्द निकल— कल मे पहले मैं उन लोगा से ईर्ष्या करता था जो क्लिओपेट्रा अथवा 'आम्रपाली' के युग म पैदा हुए थे और जिनको उन रमणियो के दशन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था परन्तु आज म अपने आपको धय समझता हू—अपना जीवन साथक समझता हू कि मैं भी एक ऐसे युग मे पदा हुआ हू जिसम पूर्णिमा जसी देवी पृथ्वी पर चलती है। मैं अपने आपको विशेष भाग्यवान इसलिए समझता हू कि मैंने देवी का स्वय अपनी आखो से देखा है। चाहता हू कि आने वाला समार मुझमे—मेरे युग से—भी देवी क सदभ से ईर्ष्या करे। और अन्त मे उसने पढा—

इतने और उत्फ्त म अलग रहने हुए भी आकृष्ट हू यही तुम्हार व्यक्तित्व की विशेषता है। फिर तुम्ही बताओ, क्या कहकर सबोधन करू बहिन ? दीदी ?, तुम्हारे एक उत्तर पर मेरी आशा अवलबित है उसने पत्र अलग रख दिया।

मनेजर साहब के मुह से शब्द निकल पडे— 'वाह वाह !

पूर्णिमा बोली— और सुनिये—तुम सुन्दर प्रतिमा अवश्य हो परन्तु कला से कोसो दूर। कला भी तुमस कोसा दूर है। साधना म प्राप्य वरदान तुम्हारे लिए सहज प्राप्त हो गया हो ऐसी मेरी मायता नहीं है। यदि अब भी कुछ बनना चाहो तो तुम बन सकती हो। अध्ययन मनन, साधना यही रास्ता है। एक समालोचक के नाते मेरा यह कत्तव्य है कि तुम्हार वास्तविक निर्माण म मेरा योग हो। हमारी सहायता से वचित तुम अपनेका न पाओगी।

तुम्हारा एक शुभचिन्तक —परन्तु नाम नारद।

कोई बात हुई न।'

ऐसे भी लोग हैं।

'यह दुनिया है—सब तरह के लोग हैं। इन किस्सों को बन्द करो। मनतब की बात इस दुनिया में है पैसा। पैसा पैदा करो और मौज मारो। बाकी सब बकवास है। पूर्णिमा ने अन्य पत्र उठा लिया और क्षणएक देखने के बाद वह उसमें से पुन पढ़ने लगी। लिखा था 'देवी पूर्णिमा। मधुशाला में सुरक्षित रस मदिरा पात्रों से वे पात्र अधिक सौभाग्यशाली हैं जिनसे पीने वालों ने पीकर उन्हें तोड दिया है अथवा बरतने से जो टूट गये हैं। यौवन व सौन्दर्य भी काम में ही आने वाली वस्तुएँ हैं नष्ट होने से पूर्व ही इनका उपभोग श्रेयस्कर है अन्यथा नाश निश्चित है। इसलिए मैं क्या कहूँ ? यही कहता हूँ कि इस तरह व्यवहार करो कि इनकी समाप्ति पर पश्चात्ताप का मौका न आय ? — सुना आपने ?'

बहुत अच्छी बात कही है। और बताऊ ? मेरे मन की कही है। आपकी भी पसन्द की हैं या नहीं ?

इसीलिए तो वह सब पढ रही हूँ कि कुछ और अधिक पसन्द की बातें मिल जायें।

आप सोचती हैं कि हम इन पत्र लेखकों से भी कुछ कम बुद्धिमान हैं ?'

बिलकुल नहीं।

फिर इन्हें पढने से क्या फायदा ?

अनेकों दिलों के हालात मालूम हो जाते हैं।

दिल सबके एक जैसे हैं। दिल एक ही बात करता है और वह है प्यार की। सिर्फ प्यार की बात करता है। अलग अलग तरह से सुनना है तो शायरों और कवियों से सुन लो। दस-बीस दीवान और काव्य-संग्रह ला देता हूँ। इस बकवास से क्या फायदा ?

इतना सुना है तो एक साहब का और सुन लें। लिखते हैं—

क्या कहकर सबोधित करूँ समझ में नहीं आता। चाँद ! नहीं यह अधिक शीतल है इसमें दाग भी है। सूरज ! नहीं यह बहुत ज्यादा गरम

है इसके पास इन्मान पहुच नही मकता। फूल ! नहीं, नहा, वह मैं नही कह सकता। इसकी उम्र बहुत कम होती है। फिर ? क्या कहूं कुछ समझ म नहीं आता। महाकवि कालीदास भी ता नारी का 'मालविका' स अधिक कुछ न कह सका। फिर मरी तो स्थिति और स्तर ही क्या है। मेरे ख्याल स यदि पृथ्वी पर कोई स्वग है, तो वह नारी है, रमणी है। इसलिए, ए ! पृथ्वी क स्वग ! वाकी दान शर्नै। — सुना ?"

'सुन लिया। बिचारा किसी सिनेमा के शायर या कविजी का मारा हुआ है। य सब कमबख्त तो मिया मजनू बनने का तयार बठे है। एकमात्र लला का जरूरत है। जो जी मैं आया याद आया लिख मारा। आप तो इनकी बीमारी स दूर रहो। इन दिल के बिमारो के लिए कहा तक मसीहा बनोगी मडम ! परलो। एक बीमार का दर्दे दिल और सुनो। वाह ! मजा आ गया —अपने हाथ के एक पत्र को देखते हुए मनजर महोदय बोले। पत्र को पढ़ते हुए व बोले—

'मालविके ! अब तक तुम स्वप्नद्रष्टा थी। कल से तुम स्वप्न-स्रष्टा हो। पर स्वप्न न बन जाना। मैं जिन्दा न रह सकूगा।

'क्या मतलब ?

'मतलब कुछ समझू ता बताऊ।

फिर भी ?

'मजनू है। दिमाग ठीक नही है। एसा के कहने का अथ कुछ नही होता। और यदि होता है तो उस कोई लला ही समझ सकता है।'

लिखने का कुछ तो अथ होगा ही।

'जरूर।

वही बता दीजिय।'

"नजदीक आइय। और नजदीक।

पत। पूर्णिमा दूर हट गई। साथ ही उसने अपने एक गाल पर अपनी साडी का अचल फेर लिया। बोली—

'इसके अलावा भी कुछ आप पुरुषों के दिल म होता है ?

क्या नहीं ? यह तो प्रारम की झलक मात्र है। सब कुछ तो इसके बाद ही है। पर ! सुनिये मडम। मिया मजनू और उसकी टोली से तुम्हारे

पूर्णिमा के बगले पर ले गई। वहां पहुंचने पर उन्होंने पाया कि उनकी प्रतीक्षा में विद्यार्थियों व युवकों की दो कला-संस्थाओं के प्रतिनिधि मण्डल बैठे थे। उनसे मुलाकात पूर्ण किए बिना उनके लिए अपने अन्य आवश्यक कार्य में व्यस्त होना असम्भव था, यह उन दोनों ने आते ही समझ लिया था। वे दोनों ही उनके पास बैठ गये। पूर्वागन्तुक उनके आने पर सम्मान में खड़े हो गये थे। पारस्परिक सम्मान के आदान प्रदान के बाद मनेजर महोदय ने पूछा— इरशाद! हुक्म फरमाइए।

हम शहर की कला प्रतिष्ठान के प्रतिनिधि हैं। आज शाम को आठ बजे हमारा सालाना जलसा है। हमारा अनुरोध है कि देवी पूर्णिमा हमारे जलसे में मुख्य अतिथि के रूप में शामिल हों और जलसे की शोभा बढ़ाकर हमें सम्मानित तथा कृतार्थ करें। एक ने कहा। दूसरा बोला—

"युवक मण्डल जो इस शहर की एकमात्र प्रतिनिधि संस्था है, कल अपने तत्त्वावधान में एक सांस्कृतिक आयोजन कर रही है। आम सभा की आज सुबह ही बैठक हुई थी उसमें सर्वसम्मति से यह निर्णय लिया गया कि शहर के सबसे अधिक प्रसिद्ध व प्रतिष्ठित कलाकार को उत्सव का अध्यक्ष बनाया जाय। जब व्यक्तित्व के चुनाव की बात आई तो आपका व्यक्तित्व ही सर्वश्रेष्ठ समझा गया और साथ ही यह निर्णय भी लिया गया कि मण्डल का एक विशिष्ट प्रतिनिधि मण्डल सुश्री देवी पूर्णिमा की उपस्थिति में कथित निर्णय की सूचना के साथ पेश हो और देवीश्री से प्रार्थना करे कि वह अपनी उपस्थिति व कुशलता से हमारा पथ प्रदर्शन करें और हमारे कार्यक्रम को सम्पादित कराएं। हम सब इसी मन्तव्य के निवेदन के लिए देवीश्री के सम्मुख उपस्थित हुए हैं। हम विश्वास दिलाना चाहते हैं कि देवी के आगमन मात्र से हमारे मंडल को एक अप्रत्याशित ख्याति प्राप्त होगी। साथ ही हमारे सारे प्रयत्न ऐसी दिशा में होंगे जिससे देवी को कोई कष्ट न हो और साथ ही सुश्री की ख्याति व प्रतिष्ठा को स्ववाञ्छित चरम सीमा पर पहुंचने का सुअवसर सरलता से प्राप्त हो जाय। कलाकार होने के नाते देवीश्री से हमें यह विश्वास है कि हमारे उत्साह के परिवर्धन में हमारे साथ उनका पूर्ण सहयोग रहेगा। इसी विश्वास के बल पर हमने पहले से ही अपने आमन्त्रण-पत्रों में देवी के नाम का सदुपयोग कर लिया है।

और इतना कह वक्ता ने अपन थैल म मे एक सुन्दर आमन्त्रण-पत्र निकालकर पूर्णिमा के मुलाहिजे के लिए उसके आग पेश कर दिया। अपन वक्तव्य का पूण करन के लिए वक्ता ने आगे कहना प्रारम्भ कर दिया—

"दवी का यह निश्चय रहना चाहिए कि हमार उत्सव म राज्य मत्री, कुछ विदेशी कलाकार, वडे-वडे प्राफेसर, अफसर, जज वकील डाक्टर नता और न जान कौन-कौन शरीक होगे। एक वडी सस्था के उद्यागपति हमारे साथ हैं। दवीधी के लिए यदि काई विशेष प्रबन्ध वाछनीय हा ता उसकी पूर्ति के लिए भी हम काई आपत्ति नही है। हमारी सस्था की यह भी परम्परा रही है कि जिन महानुभावा और महिलाआ के आगमन म हमार अध्यक्ष दिलचस्पी रखत हा उनका सकेत यदि हम मिल जाय ता हम उनक आगमन तथा स्वागत का भी यथाशक्य पूण प्रयत्न करेंगे।

परन्तु सज्जनो! दवी पूर्णिमा को आज तक कभी एसे जलसा की सदारत करन का सौभाग्य नही हुआ है। सब तरह स योग्य होते हुए भी वह अनुभव की कमी के कारण ऐसे अवसर क लिए शायद उपयागी सिद्ध न हो। वक्तव्य सनजर महाशय का था।

यह ता हमारे विचारन की बात थी, श्रीमान्जी। दवी की उपयुक्तता व उपादेयता दाना पर ही हमारी कायकारिणी न समुचित रूप से विचार कर लिया और उसक बाद ही वे हमार द्वारा निवदित निणय पर पहुचे थ।'

आपका फरमाना सब दुरुस्त है। परन्तु फिर भी आप व्यावहारिकता स सुपरिचित मालूम नही दत। देवी पूर्णिमा की उपस्थिति का जहा ही लोगा का मालूम हुआ वे सागर की लहरा की तरह उमडत हुए वही पहुच जायेंगे। इस नाम और व्यक्तित्व न जादू की-सी तासीर हासिल कर ली है। कसा भी सुप्रबन्ध कैसी ही सुव्यवस्था जनता के उत्साह के आगे कायम नहीं रह सकती। अभी अभी की बात है हम बाजार गय थे। साधारण-सी बात है। लागा का दवी की उपस्थिति का किसी तरह ज्ञान हो गया। बस फिर क्या था? क्षणा म ही दुकान क आगे जन-समुद्र लहरें मारन लगा। चीजा की खरीद रखी रह गइ। बिचारे दुकान मालिक का पुलिस बुलानी पडी। उनक पहुचन पर बडी मुश्किल से वे हमार लिए रास्ता बना सके। एसी

परिस्थिति में यह सोचना अवश्य पड़ता है कि देवी अपने कार्यक्रम को निभाने में समर्थ हो सकेंगी या नहीं।'

वह इन्तजाम तो हमारी जिम्मेदारी है जनाब। देवी की जिम्मेदारी तो स्वीकृति तक ही सीमित समझी जानी चाहिए।

फिर देवी जवाब दें।

देखिये ! सच बात तो यह है कि मेरा कभी ऐसी मजलिसों में जाने का काम नहीं पड़ा। मैं इसके लिए योग्य भी नहीं हूँ। वास्तव में मैं कलाकार हूँ भी नहीं।

वाह ! क्या नम्रता है।

नम्रता नहीं जनाब। मैं सत्य कहती हूँ। जबरदस्ती इन मेहरबान साहब ने कलाकारों में मुझे ऊपर टाँक दिया है। अपनी हीनभावना और व्यक्तित्व से मैं परिचित हूँ। मैं क्या हूँ क्या नहीं हूँ इसके विषय में मुझसे ज्यादा और कोई नहीं जानता। मेरे विषय में जो कुछ भी आपने सोचा, कहा वह सब मेरे ऊपर मेहरबानी है। सिवाय आपका शुक्रिया अदा करने के और मेरे पास कहने को भी कुछ नहीं है। मैं माफी चाहती हूँ। आप मुझको और जलील न करें यही मेरी आपसे सविनय प्रार्थना है।

अरे वाह साहब आपने तो

हमने अपनी ओर से इसमें कोई बात नहीं की है। आप सब मेहरबानों से मैं सिर्फ एक एहसान चाहती हूँ।

आप हुक्म फरमाइये न।

यही कि आपको मुझे माफ करना पड़ेगा। आज और कल दोनों ही दिन शाम को हमारी कम्पनी के प्रोग्राम है। मैं नौकर ठहरी। इतनी स्वतन्त्र कहाँ कि अपना कार्यक्रम स्वयं बना सकूँ। आप लोगों ने मेहरबानी फरमाई उसके लिए फिर एक बार आपका शुक्रिया अदा करती हूँ। मुझे इस बात की बेहद खुशी है कि आप लोगों ने मुझे याद फरमाया। साथ ही बहुत दुःख है कि आपके हुक्म का पालन न कर सकी। कहना तो नहीं चाहिए मगर आप सब अपने ही हैं इसलिए [illegible] तकल्लुफ भी नहीं होना चाहिए। अभी खाना आदि है [illegible]। यादा, [illegible]

[illegible] बात बहुत नाट [illegible]

होगा। इसलिए फिर कभी मिलने की आशा लिए हुए मैं आप सब लोगों से अभी जुदा होने के लिए माफी चाहूंगी—अच्छा नमस्ते। फिर कभी दर्शन देने का कष्ट कीजियेगा। आज की बात तो हो ही गई। आइये, मनेजर साहब।'

और इतना कह पूर्णिमा शीघ्रता से आगन्तुकों की उपस्थिति से दूसरे कमरे में चली गई।

७

मनजर किशोरीलाल ने पूर्णिमा के विज्ञापन म पसा पानी की तरह बहाया और बाढ के पानी की तरह ही उसके पास पसा आया। मगर फिर भी वह ऐसी परिस्थिति मे न आया कि कुछ पूजी उसके पास इकट्ठी हो जाय। इस समय पूर्णिमा ही उसका सबस बडा आश्रय थी। देश के हर समाज म गम्भीर रूप से फली हुई यौन विकृति की समस्या से वह पूणरूप स परिचित था और इसलिए उसने सोचा कि पूर्णिमा के शारीरिक सौदय की सहायता से वह समाज का और अधिकता से शोषण करे। निरतर एक माह उग प्रदशन दत हो गया था मगर फिर भी आशा जहा तक धन का प्रश्न था सफलीभूत नही हुई थी। प्रत्यक्ष रूप से एक तरफ स टिकट घर पर रुपये बरसने पर भी अनक कलाकारो को पूणरूप से पारिश्रमिक दने म भी वह अपने आपको समथ नही पा रहा था। आज अपन ही किसी विश्वास-पात्र कलाकार की माफत उस यह सूचना भी मिली कि यदि प्रदशन के प्रारम्भ क पूव उसन उनक पारिश्रमिक को नही चुकाया ता व बहुत सम्भव यही है उसका साथ प्रदशन म नहा देंगे। एसी परिस्थिति म वह होन वाली आर्थिक क्षति व कलाकारो के असहयाग स होने वाली बदनामी का अन्दाजा भली प्रकार लगा सकता था। अपन जीवन म वह ऐस अनुभवो म स कई बार गुजर चुका था। जब कलाकार स्वय अपना स्वीकृति म अपने ही मित्र अथवा कजख्वाहा की माफत कम्पनी स रुपया वसूल करन के लिए अपन पर गिरफ्तारी का वारण्ट आदि निकलवान अथवा लाकर उनको अपन पर तामील करवाने म समथ हो गय थ और कम्पनी को अपनी विवशता म उनक रुपये तुरन्त दन पर वाध्य होना पडा था। एसी परिस्थिति का पूव आभास मिलन पर कुछ एसा प्रबध अवश्य किया जा सकता था जिसम शान बनाई जा सके। आज की प्रस्तुत परिस्थिति म उसने कलाकारों और प्रदशन विषय की दृष्टि स वकल्पिक प्रबध करन उचित समझ। उस निश्चय था कि पूर्णिमा

के उमके साथ रहते वह कोई-न-कोई सुप्रबन्ध करने म अवश्य समथ हो जायगा। हाथ पर-हाथ धर बैठे रहने की उसकी आदन नही थी। इसलिए कुछ देर अपनी समस्या पर विचार करने के बाद उमने इस विषय म पूर्णिमा से बातचीत करनी मुनासिब समझी। इस समय दिन निकल थोडे ही दर हुई थी। वह झटपट बाहर जाने के लिए नयार हो गया और अपनी मोटर गरेज से निकालकर सीधा पूर्णिमा के बगले पर पहुच गया। जिम समय वह वहा पहुचा पूर्णिमा चाय पी रही थी। पहुचते ही पारस्परिक औपचारिक अभिवादन के आदान प्रदान के पश्चात पूर्णिमा ने पूछा—

"आज सुबह सुबह ही और मालूम होना है कुछ जल्दी म '

तुम्हारा अन्दाज ठीक है पूर्णिमा!"

"क्या बात है ? '

"वसे सब ठीक है। परन्तु जसे ठीक होना चाहिए वस नही है।

'फिर भी ?

"पहले चाय पीलें। फिर विस्तारपूवक बात करेंगे।'

पूर्णिमा के आदेश से घर की सेविका चाय का दूसरा प्याला ले आई। मनेजर किशोरीलाल चाय पीने लगे। दो एक घट गरम पेय के अपन गले स नीचे उतारकर वे बोले—

'तुम्हारे चेहरे पर चिन्ता की कुछ रेखाए चक्कर लगाने लगी है। इस तरह की कोई बात नही है जिससे तुम्हें चिन्तित होने की आवश्यकता हो।

"यहसब तो आपसे सुनने के बाद मालूम होगा।'

'इससे पहल कि अपनी बात शुरू करें तुम्ह अपनी सेविका व दरबान को हिदायत दे देनी चाहिए कि कोई अन्य व्यक्ति हमे सूचना दिए बिना कमरे के पास न आय।'

पूर्णिमा ने अपन प्रबन्धक मालिक के आदेश का पालन किया और यथेच्छा अपने कमचारियो को सख्त हिदायत कर दी कि कोई भी बिना इत्तला के कमरे के आसपास न आय। अब तक प्रबन्धक ने अपनी चाय पी ली। वह पूर्णिमा से बातचीत प्रारम्भ करन के लिए तयार हो गया। उसने पुन पूर्णिमा के आकर बठने पर कहना प्रारम्भ किया— तुमने देखा है और देखती हो कि ससार म सबसे बडी वस्तु पसा है। मैं कई बार तुमको

एमा कह चुका हू और कहना रहता हू। आज भी तुमको अपने सम्पूर्ण अनुभव के आधार क ऊपर पूर्ण गम्भीरता से यह कहता हू कि दुनिया म पसा जितनी बडी वस्तु कोइ नही है। तुम देखती हो जब से हमने प्रदर्शन दने प्रारम्भ किय हैं पैसा हमारे टिकट घर पर बरसता सा मालूम होता है। परन्तु यदि वास्तव म देखा जाय अथवा लेखा जोखा लगाया जाय तो स्थिति इधर आया—उधर गया जसी है। सच पूछा जाय तो हम नफे म नही हैं बल्कि घाटे म ही है और सिर्फ एक व्यावहारिकता का चक्कर चल रहा है। इधर कुछ दिना म अपन लम्बे अनुभव क आधार पर यह आशका थी और आज मुझे उसका आभास भी मिल गया कि मेरी कम्पनी के कर्मचारी प्रदर्शन के ठीक पूर्व कुछ अड़चन और यदि उनका काय नहीं बना, तो पूर्ण असहयोग अथवा हड़ताल कर देंगे। इसका मतलब सिवाय कम्पनी बन्द होने के और कुछ नही हो सकता। एसी स्थिति मे वेशभूषा सज्जा विज्ञापन रगभूमि की सुगमता आदि म खर्च की हुई कुल रकम व्यय व सम्पूर्ण घाटे की सम्पत्ति सिद्ध होगी।

'आपने फिर क्या सोचा ?

'यही निर्णय लेन क लिए तो यहा आया हू।

'मेरे पास तो कुछ भी नही है। अपने मामूली इखराजात क लिए भी मैं तो आप पर निर्भर हू।

'यह मुझ स छिपा हुआ थोडे ही है मैडम।

फिर ?

'अपने सम्पर्क म आये हुए किसी व्यक्ति से तुम केवल एक सप्ताह के लिए सिर्फ दस हजार रुपया की माग कर सकती हो ?'

मैंन तो कभी किसी स इस तरह रुपया मागा नहीं।

'रुपया हर समय थोडे ही मागा जाता है ?

'रकम भी तो बहुत बडी है।

'तुम्हें अपना कीमत का अन्दाजा नहीं है मैडम। तुम्हारे जैसे व्यक्तित्व का रमणी क लिए इतनी रकम तो कुछ भी नहीं है। अब भी तुमने अपने व्यक्तित्व को नहीं समझा ? '

'मुझे तो कोई ऐसा व्यक्ति ही नजर नहीं आता जिसके आगे यह माग

मैं रख सकूं।"

दो तीन व्यक्ति मेरी निगाह में हैं परन्तु

"परन्तु क्या ? कौन हैं वे ?"

'वे ही हो सकते हैं जिनकी तुम्हारे में दिलचस्पी हो।'

'फिर भी ?"

"यह भी मुझे बताना पड़ेगा, मैडम ?"

"हर्ज ही क्या है ? किसी के बक वर्लेम जानने का तो मुझे मौका नहीं मिला।

'एक तो वही है जिसने तुम्हें अपने प्रथम प्रदर्शन के दिन अपनी हीरे की अंगूठी अपनी अंगुली से उतार तुम्हारी अंगुली में पहना दी थी। वह धनी है, उदार है और खुदमुख्तार भी है।"

'दूसरा ?'

'दूसरा वह जागीरदार का छोकरा है जिसे अपनी जागीर की कुल रकम अभी अभी हाथ लगी है। बराबर तुम्हारे हर प्रदर्शन में वह सबसे आगे की रिजर्व सीट पर बैठता है।'

इससे तो कभी मिलने का मौका भी नहीं मिला।'

'तीसरा वह उद्योगपति का लड़का है जो दिन में पांच-सात बार आपके लिए फोन खटखटाता रहता है। रंगभूमि पर भी मैंने आपकी जिससे अभी, तीन चार दिन पहले मुलाकात फरमाई थी। कल भी शायद वह आपके पास मुलाकात करने आया था और मुलाकात करके भी गया था।"

"हां, हां ! मगर, आपको कैसे मालूम हुआ ?'

"आवेश में आदमी आधा पागल होता है। प्रेम के आवेश में उसे पूरा ही समझना चाहिए। वह स्वयं मुझे कह गया था। किस तरह आपने उसे सत्कार किया, क्या क्या तवज्जह हुई किस तरह मुलाकात के बाद कमरे के बाहर तक आप उसे छोड़ने आई, आपकी मुस्कराहट का क्या मतलब था आदि सारी घटनाएं एक दास्तान की तरह उसने मुझसे कही। इस समय तुम उसे यदि कोई भी बात करो तो वह उसे टालेगा नहीं, अस्वीकार कुछ भी नहीं कर सकता।' पूर्णिमा क्षणएक के लिए चुप हो गई। मगर उसने पुनः पूछा—

'पूर्णिमा देवी ! एक बात कहूं ? तुम्हारे निर्माण में मेरा और मेरी कम्पनी का योग है। जो व्यक्तित्व आज हमने तुम्हारा बनाया है उसमें हमने अपना सर्वस्व अर्पण किया है। मैं तुम्हें अपनी पिछली परिस्थिति याद दिलाना नहीं चाहता, परन्तु फिर भी यदि स्वयं तुम अपनेको—कम्पनी में आने से पहले की पूर्णिमा का—आज की पूर्णिमा देवी से मुकाबला करो तो अन्तर स्वयं तुम्हारे हृदय को सारा सत्य प्रकट कर देगा। मेरी और कम्पनी की मुसीबत में तुम्हें बचाने की पूर्ण कोशिश करनी चाहिए।'

"मुझे इन्कार कब है ?

फिर किसकी कहानी ?

'जिसकी भी कहलाना आप उचित समझें।'

यह तो एक बात हुई।

"दूसरी ?'

'दूसरी यह कि यह योजना यदि असफल हो जाय तो हमें प्रदर्शन के लिए वैकल्पिक इंतजाम भी कर लेना चाहिए।'

'आज का आज ?

'क्यों नहीं ?' क्षणएक विरमकर उसने कहा—

'दुनिया तुम्हें देखने आती है। चाहे जिस नाम से, बहाने से हम उन्हें तुमको दिखा देंगे। इसी नगरी में साल में सैकड़ों चित्र बनते हैं। कुछ पूरे कुछ अधूरे। कितनों में तुमने कहानी देखी है ? कितनों में सैद्धान्तिक विषय का प्रतिपादन होता है ? कितनों में सुन्दर संगीत, नृत्य की साधना दिखाई देती है ? कितने कवियों और साहित्यकारों की गीतों और वार्तालापों में पीड़ा नजर आती है ? कितनों में नव योजना और निर्माण के दर्शन होते हैं ? कला के नाम से उसके बहाने प्राय: नवल नारी का रमणी रूप उसके यौवन और सौन्दर्य का नमूना प्रदर्शन और पुरुष के उसके प्रति कुत्सित भावों में आकर्षण और चेष्टाओं की कहानी चलती है। ऐसे ही चित्र हमारे देश के निर्माताओं संचालकों और कलाकारों की कलाकृतियां हैं जिन्हें वे 'बाक्स आफिस हिट्स' के नाम से पुकारकर जनता में भ्रम फैलाते हैं। उन्हें यदि ऐसा करने में कोई नहीं रोकता तो हम कौन रोकेगा ? एक गीतिका अथवा संगीतिका के रूप में मैं यौवन और सौन्दर्य की कहानी पेश करना

चाहता हू। यह एक ऐसा कलर्ट' होगा जिसम मुझे सिवाय तुम्हारे और पाच-सात अन्य सहायक कलाकारा के और किसी की आवश्यकता नही होगी। यदि उन्हाने आज कुछ भी इधर उधर की और प्रदशन मे बाधा डाली तो। मेरा सवाल यही है कि मैं आज ही इस प्रस्तावित सगीतिका का प्रदशन सपादित कर दूगा। तुम्हें मैं सिफ सतक करने आया हू कि तुम मज-बूत रहना, किसी के बहकावे म आकर मेरी याजना से असहयोग का खयाल मत कर बठना। तुम्हारे अपनी जगह न रहने की सूरत म हम कही के न रहेंगे।"

'मेरे लिए तो आप कुछ चिता न करें। यही समझिय कि मैं आपकी ही इच्छा और इशारे पर आश्रित हू। मुझे क्या करना है इसका मुझे थोडा सा पूर्वाभास मिल जाना काफी हागा।"

'अच्छा तो अभी मैं चला। पहले तो देखता हू कि इन पैसे वालो से मुलाकात होता है या नही और इ ह कुछ कहना साथक भी हागा या नही। दूसरा मुझे एक ऐसे कलाकार से मिलना है जा तुम्हारा उपयोग बिना किसी विशेप तैयारी के रगभूमि पर आज ही कर सके। मुझे ऐसे कलाकार की सूचना कुछ दिन पहले मिली थी। अपने ही लेखक हृदयेशजी की अनिच्छा के कारण उससे मुलाकात करने का मौका न मिला। सोचता हू, शायद अनोख चित्रकार से उसका परिचय हो। कारण वह चित्रकार, मूत्तिकार, कवि लेखक सगीतकार सब-कुछ है और उसकी हर कृति म अपनी स्वय की एक विशिष्ट छाप है। अपन हृदयेशजी की उसके प्रति अनिच्छा और अवहेलना के कई व्यक्तिगत कारण हो सकते हैं। परन्तु आज अपनी परि स्थिति मे हम उनमे जान की जरूरत नही है। यदि उससे मुलाकात हो गई तो मैं उसे इस बात के लिए रजामन्द अवश्य कर लूगा कि वह आवश्यकता पडने पर हमारी सहायता क लिए रगभूमि म तुम्ह साथ लेकर अकेल अपनी कला का प्रदशन द सक। आज जसा भी हो शानै-शान उसम खूबसूरती आ जायगी। अच्छा' तो मैं चलता हू।'

इतना कहकर ज्यो ही वह उठकर कमरे के बाहर आया उसे फाटक पर अपनी ही कम्पनी के अनेका कलाकार दरवाजे से अन्दर प्रवेश करने के लिए बहस करते हुए दिखाई दिय। क्षणएक अपनी किसी ि

र उनने बाहर निकलती हुई पूर्णिमा को उनके आने की सूचना दी और पनी आशंका को भी उनके सामने व्यक्त कर दिया। पूर्णिमा पर पहले से उसे विश्वास था, परन्तु पुन आश्वासन पाकर वह दरवाजे की ओर बढ़ ला।

मनेजर महोदय के जाते ही व लोग पूर्णिमा का सकेत पाकर अन्दर चले ी। बात वही थी जिसकी आशंका पहले से ही वे आगे व्यक्त हो चुकी । पूर्णिमा को स्पष्ट शब्दो मे आगन्तुकों ने कह दिया कि यदि उनके रिश्रमिक की वसूली आज चार बजे से पहले पहले नही हुई तो व प्रद न मे भाग नही लेंगे। पूर्णिमा से भी इनका यही अनुरोध था कि वह सह कलाकार होने के नाते उनकी माग म शरीक हो। पूर्णिमा से सहा भूति और आर्थिक सहयोग का वचन लेकर ही उन्होने उसके बगले को डा।

प्रबन्धक किशोरीलाल की बावजूद कोशिश करने के भी उन व्यक्तियों मुलाकात न हो सकी जिनसे वह रुपयो का इन्तजाम कर सकता। अशोक चित्रालय पर पहुचने पर उन्हे अशोक ने बताया कि सत्यकुमार नाम के कलाकार अवश्य हैं जिन्होने कुछ नत्य नाटिकाओ और सगीतिकाओ रचना की है जो बहुत कम कलाकारो से अभिनीत की जा सकती है न्तु अपने निर्देशन म वे इतने कड़े हैं कि किसी का किसी प्रकार का नी रचना और उसके अभिनय मे हस्तक्षेप नही चाहते। हस्तक्षेप आया र व गये यही अशोक ने सत्य के स्वभाव को बताया। अपनी निराशा किशोरीलाल के समक्ष कोई अन्य चारा ही नहीं था कि अपनी इज्जत ा क लिए वे समस्त शर्तें स्वीकार करते। शाम को आठ बजे प्रदर्शन रम्भ होना था। चार बज रहे थे। अशोक ने उन्हे आश्वासन अवश्य दे या था कि व उस कलाकार को पाच बजे स पहले पहले 'रगभूमि' म ये पास भेज देंगे।

प्रबन्धक किशोरीलाल उनके आश्वासन पर विश्वस्त हो सीधे 'रगभूमि ा गए। वहीं से उन्होने पूर्णिमा को सन्देश भेज दिया कि वह भी सीधी पनम्ब वही आ जाय। पूर्णिमा आदेशानुसार वहा पहुची कि साथ ही नये व्यक्ति भी वहा पहुच गये। पूछने पर उन नवागन्तुकों ने बताया

वि य अभाव बाबू के आग्रह स वहा आए हैं और 'रगभूमि' मे उपलब्ध सज्जा-सामान का एक बार निरीक्षण करना चाहते हैं जिससे वे प्रदशन सम्ब धी विषय सामग्री के सम्बध म किसी निरणय पर पहुच सकें।

सम्बधित सज्जा समीक्षण क बाद आगन्तुकों ने रगभूमि के मुख्य कलाकारों क विषय म अपनी जानकारी चाही, जो आसानी म उपलब्ध हो। सचालक द्वारा उन्ह यह बता दिया जाने पर कि उपस्थित पूर्णिमा और चार पाच अन्य अतिरिक्त के वे औरों के सहयोग की आशा नहीं रखते। वे परस्पर अलग विचार विमश करने लगे। कुछ क्षण के बाद व एक निश्चय पर पहुच गए और उन्होंने प्रबधक महोदय को एक आठ-दस फुट पारदर्श शीशे का प्रबध तुरन्त कर लेने का आग्रह किया। शीशे के अभाव म किसी भी पारदर्श अभिकरण से काम ले लेने की उन्होंने बात कही। अपनी इच्छित सज्जा-सामग्री को अपने अधिकार म ले उन्होंने तुरत रगमच को अपने मनोनीत प्रदशन की अनुकूलता म सजाना शुरू कर दिया। *विशिष्ट नाम के अभाव म उन्होंने अपने प्रदशन को 'अभिनय' नाम से* पुकारना अधिक स्वाभाविक समझा और इसलिए उन्होंने प्रबधक महोदय को सलाह दी कि व सम्बधित प्रदशन का इसी स्वाभाविक नाम से विज्ञापन करें। सिफ सात घण्टे प्रदशन प्रारम्भ होने म शेष रह गये थे। प्रबधक महोदय को आगन्तुकों की विश्वस्त वाणी पर आस्था थी और इसलिए उन्होंने एक अडिग विश्वास स यथा आज्ञा तुरन्त प्रयत्न म सलग्न हो जाने का निश्चय किया।

अशोक द्वारा भेजे हुए दल न रगभूमि के बाह्य हिस्से म सजी विज्ञापन सामग्री को अपनी पनी दृष्टि स जाचा। समय के अभाव को देखते हुए उन्होंन उसम इतना ही परिवतन किया कि पूव प्रकाशित विषय की तारीखों को लोप कर दिया। रगभूमि म आज के प्रदर्शन क्रम के नीचे उन्होंने देखते देखते पूर्णिमा की अशोक द्वारा चित्रित 'सद्य स्नाता' की कलाकृति स्थापित कर दी। इस थोडे-स परिवतन से ही वाछित असर वहा की सजावट म आ गया था। केन्द्रीय कक्ष के केवल इस एक परिवतन न रगभूमि की बाह्य सज्जा मे एक विचित्र असर ला दिया और ऐसा मालूम देने लगा कि समस्त रगभूमि के विशाल भवन और जिस पथ पर वह स्थित था उन म सबन एक

अनुपम शृंगार का सुलभ सौन्दर्य निखर आया है। प्रबन्ध में बालक किशोरी लाल के हृदय में इस परिवर्तन के असर मात्र से यह विश्वास आ गया कि सहयोगी दल अपने कार्य में सिद्धहस्त है और उन्हें प्रदर्शन के सम्बन्ध में किंचितमात्र भी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने मुक्त हृदय और हस्त से अभिनय के विज्ञापन को प्रसारित किया। देखते देखते घण्टे भर में गली बाज़ार, स्कूल, कॉलेज, आहार-गृह, निवास-गृह छविगृह—सर्वत्र 'अभिनय' की चर्चा चलती सुनाई दी और ऐसी धूम मची कि प्रदर्शन के एक घण्टे पूर्व पुलिस को रंगभूमि के आगे समुद्र की लहरों की तरह सब ओर से उमड़ती भीड़ का नियन्त्रण करने के लिए विशेष प्रबन्ध करना पड़ा। इस प्रबन्ध के बावजूद भी अनेकों राहगीर दर्शनार्थी घायल हो गये कुचल गए अथवा शीर्णवस्त्र हो गये। अनेकों को निराश में वापिस लौटना पड़ा।

ठीक इस समय पर अभिनय प्रारम्भ हुआ। पण्डाल पूर्णरूप से भरा हुआ था। वहां किसी को मालूम नहीं था कि अभिनय में दर्शक क्या देखेंगे। रंगशाला से आवरण हटते ही सितार पर मधुर स्वर सुनाई देने लगे। रागिनी बागेश्वरी की आलाप थी। वादी सवादी स्वरों की स्पष्टता के साथ ही दूर अंधेरे में एक दीपक टिमटिमाता हुआ नज़र आया। दूसरे किनारे से एक अन्य दीपक की लौ गति पकड़ती हुई दिखाई दी। देखते देखते दोनों दीपक दूरी से एक दूसरे के इतने समीप आ गये कि उनकी दोनों ज्योतियां एक हो गई। साथ ही शब्द सुनाई दिया—जीवन अमर कहानी—दूर का अंधेरा शनैः शनैः प्रकाश में परिवर्तित होने लगा। दर्शकों ने देखा कि दीपकों के पास से एक पुरुष और एक स्त्री बढ़ते हुए प्रकाश के साथ साथ दूर अंधेरे में प्रकाश की सीमा से बाहर प्रवेश कर रहे हैं। अब तक दीपकों के तले अंधेरा था। ज्यों ही वहां प्रकाश की किरणें पहुंची दर्शकों ने देखा कि एक बच्चा वहां खेल रहा है। वादक ने बागेश्वरी के स्वरों की पकड़ को इतना स्पष्ट कर दिया था कि एक तरह से स्वयं वह रागिनी अपने मूर्तरूप में श्रोताओं के मानस में खड़ी हो गई थी। दीपकों की लौ की गति से अब बच्चे की गति अधिक सक्रिय थी। शब्द अब एक गीत में परिवर्तित हो गये। स्पष्ट गम्भीर मधुर स्वरों में गीत गतिमान हो चला। श्रोताओं ने सुना—

जीवन अमर कहानी, सजनी !
बाल सल सल मुस्काए
हाथ बनाए पाव सं ढाए
पल क्षण बीतत बीतत बाला
बने किशोरी रानी सजनी !
जीवन अमर कहानी, सजनी ।

गीत की मन्द गति के साथ ही दर्शकों ने देखा कि दो विभिन्न दिशाओं से रंगशाला पर एक बालक और एक बालिका अपने अपने खिलौनों से खेलते हुए आ उपस्थित हुए। सुदर बालक बालिकायें। सुदर ही उनके पास खिलौने थे। अपने अभिनय में गीत की वस्तुकथा और उसके भाव को उन्होंने अपने बाल सुलभ खेलों से अभिव्यजित किया। ज्यों ही अपने प्रिय खिलौनों को अपने भावों से नष्ट भ्रष्ट करते हुए वे रंगशाला से अदृश्य हुए गीत आगे बढ़ा—

यौवन आए मधु बरसाए
अंग अंग शृंगार सजाए
नव वसन्त रति रूप किनारी
हृदय हृदय की रानी, सजनी।
जीवन !

दर्शकों ने देखा कि दूर रंगशाला के शीशकक्ष की रोशनी मे नववसंत की छटा, शोभा बिखर रही है। गीत के शब्द जहा अवकाश लेते हैं वहीं मधुर वंशी के मोहक स्वर उनका स्थान ले लेते हैं। वे जब रुकते हैं तो कोकिला की मीठी कूक उन्हें सुनाई देती है। गीत ज्यों ज्यों गति पकड़ता है त्यों-त्यों रमणी का विकसित होता हुआ यौवन दूर अस्पष्ट रूप से उन्हे दिखाई देना प्रारम्भ होता है। रंगशाला पर और सम्पूर्ण प्रशाल पर एक स्थान की परिस्थिति छा जाती है। तब वसन्त के वातावरण म नारी के नव विकास की परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है। चादनी के मन्द प्रकाश मे हवा के झोंकों के साथ भीने वस्त्र, अचल, रमणीय अंगों के आवरण का काम नहीं देते। रमणी ज्यों-ज्यों रंगशाला के अग्रभाग की ओर अग्रसर होती हुई दिखाई देती है त्यों-त्यों दर्शकों को महसूस होता है कि शीघ्र ही

वे यौवनश्री का उसके स्वाभाविक सौन्दर्य में देख सकेंगे। समाप्त होती हुई सौन्दर्यश्री के ओझल होने से पूर्व ही फिर वही दूर उसमें भी अधिक रमणीयता का दृश्य दृष्टिगोचर होने लगता है। प्रत्येक बार कुछ अधिक विकास के साथ इस दृश्य की पुनरावृत्ति चलती रहती है। जब हम दर्शक स्वाभाविकता में सौन्दर्यश्री को अपनी आंखों से देखने की स्थिति पर बिना आवरण यौवनश्री के साक्षात्कार होने को उद्यत होता है, ठीक उसी क्षण यह रूप ओझल हो जाता है और उसमें भी अधिक विकसित रमणीयता दूर उसे दिखाई देने लगती है।

ऐसे ही दृश्य के मध्य में रंगशाला के अग्रभाग में एक नवयौवना मतकी सोलह शृंगारों से सजी हुई अभिसारिका के रूप में प्रवेश करती है। किसी के आने की किसी से मिलने की भावना उसके नृत्य में स्पष्ट है। थोड़ी देर की प्रतीक्षा के बाद जैसे उसे अपने प्रेमी के आने का आभास मिल गया है, उसके हाव भावों से, मुद्राओं से मालूम होता है। परन्तु इस भाव को प्रदर्शित करने के पूर्व वह अपने नृत्य में गीत के भावों की पूर्ण व्यंजना कर देती है। रूठी मानिनी की मुद्रा उसके नृत्य का नेपथ्य है।

इस नृत्य के नेपथ्य की समाप्ति के पूर्व ही गीत अपने नये विषय और चरण में प्रवेश करता है। गायक आता है और गाते हुए सुनाई देता है—

घूंघट पट कर मुस्काए
नैन झुकाए नैन उठाए
मद विष अमृत छलकत नैना
यौवन प्रेम कहानी सजनी।
जीवन अमर कहानी सजनी।

गीत संगीत तू कविता मेरी
प्रेम भावना प्रतिमा मेरी
शरद प्रायला आसू अंचल
विश्ववन्द्य रति रानी सजनी।
जीवन अमर कहानी सजनी।

परन्तु गायक ने देखा कि उसकी प्रेम प्रतिमा उसके देखते देखते रंग

शाला के पार्श्व में ओझल होकर नाशकक्ष की दृश्यावलि में सम्मिलित हो गई है। विषाद भरी परेशानी के बाद वह पुनः पुकार उठा—

स्वप्न सुन्दरि ! न भरमाओ
विरह रागिनी अब न गाओ
शून्य हृदय, मिहामन तेरा
जीवन प्रेम कहानी सजनी।
जीवन अमर कहानी सजनी !

पटाक्षेप नहीं होता। यवनिका पतन नहीं होता। गायक को कुछ विराम देने के लिए तन्तु-वाद्य के कुछ गंभीर, दर्द और अवसाद भरे स्वरों ने उसके शब्दों का स्थान ले लिया। रंगशाला पर शनैः शनैः रोशनी कम होने लगी। मालूम देने लगा जैसे प्रस्तुत दृश्य की समाप्ति का यह संकेत है। करतलध्वनि से प्रशाल गुंजित हो उठा।

परन्तु ठीक इसी समय दर्शकों ने देखा कि रंगशाला की पृष्ठ भूमि पुनः एक गुलाबी रोशनी में जाग्रत हो उठा है। मालूम होता था कि अभिनय के संचालकों ने इस करतलध्वनि को अपने प्रयासों की प्रशंसा में पर्याप्त नहीं समझा। इसीलिए करतलध्वनि के बाद भी उन्होंने प्रस्तुत दृश्य की पुनरावृत्ति नहीं की। रंगशाला के शीशकक्ष की गुलाबी रोशनी ने दर्शकों के मस्तिष्क में भाव-परिवर्तन का काम किया। उन्होंने देखा कि एक पूर्ण यौवना लहराते सरोवर की ओर अग्रसर होती हुई आ रही है। सुबह की रागिनी की एक स्वर लहरी उसकी चाल का साथ कर रही थी। रमणी ने आते ही अपने वस्त्रों का उतारना आरम्भ किया। दर्शकों ने उसके मस्तक का अंचल हटाते हुए देखा। काल बादलों की घटाओं की तरह उसके काले बाल हवा में लहराने लगे। उसने अपनी अंगिया खोलकर सरोवर के किनारे सहज भाव से रख दी। सरोवर के एकान्तपन की दृष्टि से उसने अपनी साड़ी को समेटते हुए सरोवर के नीर में प्रवेश किया। इस प्रवेश काल में दर्शकों को नारी के आवरणहीन यौवन की, रमणी की निवसन रमणीयता की क्षणिक झलक भी मिली। परन्तु साथ ही तुरन्त उनका ध्यान रंगशाला के पार्श्व से निकलती हुई एक सौन्दर्यश्री नर्तिका की ओर आकर्षित हो गया। दर्शक किसे देखें ? सरोवर की सुन्दरी को अथवा

रगमच पर सम्पूण सजधज के साथ उपस्थित सौ दयश्री को ? पावो म बधे घुघरुओ की आवाज ने क्षणएक के लिए सरोवरश्री स उनका घ्यान रगमच की सौदयश्री की ओर आकृष्ट कर लिया था। परन्तु ज्यो ही सद्य स्नाता ने पानी की सतह स उठकर अपना रूप प्रदर्शित किया दशक पुन इस प्राय अनावत सौन्दयश्री की ओर एकटक देखने लगे। नतकी के पावो के घुघरुओ की आवाज दशकों की दृष्टि पुन उसकी ओर लौटा लाती। रग शाला पर सजे ये दो दश्य बिन्दु कुछएक क्षण तक दशकों की मधुर उलझन का कारण बने रहे और यह महसूस और मालूम करना मुश्किल न रह गया कि प्रत्येक रमणी को हर हरकत अपनी ओर उनकी दृष्टि का प्रत्यावतन प्राप्त करने मे सपूणरूप स समथ थी। अभिनय के सचालकों का कला के क्षेत्र म यह एक निर्भीक प्रयास था, परन्तु साथ ही दशकों के लिए भी ऐसे दश्यों का उपयोग एक नया अनुभव सिद्ध हुआ। प्रशाल मे उपस्थित दशक गण अभी नारी के आवत और अनावत सौ दय उपभोग की उलझन से पूणरूप स मुक्त भी न होने पाए थे कि नतकी के कठ से मधुर और सुसयत स्वरो म एक विलासमय गीत की शब्दावलि सहज भाव से बह चली। शब्द थे—

साझ तो ढलने द साजन।
दीप तो जलने द साजन।
प्रीति की तो रीति यह है
सोए जग हम जागे साजन। साझ

दशकों न देखा कि गीत के प्रारम्भ क साथ साथ ही रगशाला के दूसरे पाश्व से पूव उपस्थिता रमणी स भी अधिक शृगारमयी एक अन्य सुकुमारी। प्रस्तुत गीत की भाव तथा वस्तु-यजना अपने अग चालना और विभिन्न मुद्राओ द्वारा स्पष्ट करती हुई उपस्थित हुई है। इस सुकुमारी क गीत की शब्दावलि का स्पष्टीकरण और निवचन भारत की पूर्वीय शैली म था। इसकी विभिन्न मुद्राओ और जटिल पद-सचालन की सूक्ष्म क्रियाओ स यह भलीभाति पता चलाया जा सकता था कि पूव क ठुमरी अग की और दक्षिण के भरत-नाट्यम् की यह सुकुमारी एक सिद्ध कलाकार है।

गीत की शब्दावलि ज्यो ही समाप्त होती यह सुकुमारी उसकी मातना

य अनुकूल उसका निवचन अपने नत्य मे करना प्रारम्भ कर देती। वादक अवसर दिये जाने पर अपने अपने वाद्य-यत्रो पर उन्ही भावो का स्पष्टी करण करते। यह सुकुमारी ज्यो ही अपनी विशेष उपयुक्त मुद्रा से अपने निवचन की समाप्ति का सकेत देती, पूव उपस्थिता रमणी गीत को, उसकी कविता को, उसकी वस्तुकथा को, उसके विषय को अपनी स्वरमयी वाणी से और आगे अग्रसर कर देती। कविता गीत सगीत के सगम का सुरुचि पूण प्रदशन ही आज के अभिनय का कायक्रम सचालको द्वारा निश्चित किया गया था। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रस्तुत विषय म इस गीत, सगीत तथा नत्य की रचना की गई थी। इसी सिलसिले से गीत आगे बढा—

आज वाणी गीत होगी,
आज स्वर सगीत होगा।
नैन नैनन मधु पियेंगे,
अधर प्लावित सुरस होगा।
शीन सयम शिथिल हह गय,
दृगी मत सत्कार भाजन।
साझ ढलन दे र, साजन,
दीप जलन दे रे साजन।

गीत का गायन हुआ। नत्य म पूववत उसकी अभियजना हुई निवचन हुआ। सहयोगी वाद्यो न सबके प्रभाव को द्विगुणित करन म सहायता की। नतकी के अविचलित मूर्ति मुद्रा ग्रहण करते ही शब्दावलि फिर आगे चली—

मलय शीतल पवन वातायन चलेगा,
यामिनी होगी मदेनी चान्दनी का सग होगा,
रसग गाया रति सुलभ श्री स सजेगी,
चिर प्रतीक्षित स्वप्न का साकार होगा,
रूप, यौवन, मधु कलश का
दूगी मैं उपहार साजन।

८

आज 'अभिनय' के प्रथम प्रदर्शन को कई दिन बीत गये। इस अरसे में पूर्णिमा को वे सभी अनुभव बराबर हुए जो एक प्रख्यात अभिनेत्री को रात दिन हुआ करते हैं। उसका विज्ञापन उसकी सूरत का विज्ञापन उसके शरीर सौन्दर्य और यौवन का विज्ञापन—सभी अपना विभिन्न व्यापारिक धाराओं में पराकाष्ठा पर प्रवाहित हो रहे थे। व्यापारिक परम्परा में एक विशेष साधन बन जाने के कारण पूर्णिमा को अब सम्पत्ति अथवा उससे प्राप्य वस्तुओं का अभाव नहीं था। कोई भी व्यापारिक संस्था अथवा व्यापारी यदि उसके पास आता तो किसी न किसी उपहार के साथ आता और पूर्णिमा के लिए उसको अनुग्रहीत करने के लिए इतना ही पर्याप्त था कि वह उसकी वस्तु-सामग्री की यथेच्छा प्रशंसा कर देती और अपनी उस प्रशंसा अथवा राय को प्रकाशन करने की उस व्यापारी को अनुमति दे देती।

स्वयं के इस साधन के अलावा प्रबन्धक किशोरीलाल ने भी घर सामग्री के रूप में उसे अनेकों वस्तुएं उपहार रूप में प्रदान कर दी थीं। जो भी व्यक्ति उससे मुलाकात करने आता कभी खाली हाथ आता हुआ नहीं मालूम देता। अभिनय के प्रथम प्रदर्शन के बाद तो उसके निवास पर वास्तव में धनी मुलाकातियों की कतार-सी लगी रहती।

पूर्णिमा को अपने जीवन के पुराने दिन याद थे। रुपये-पैसे की महत्ता से वह पूर्णरूप से परिचित थी। जीवन में उसका निपट अभाव भोग लेने के बाद अब किसी का उसे यह बताने की आवश्यकता नहीं थी कि उसे अपने भविष्य के लिए पर्याप्त धन-संग्रह कर लेना चाहिए। उसने किया भी। प्रबन्धक किशोरीलाल से मिले करीब पचीस हजार रुपये का अपना बैंक एकाउण्ट खोलकर अपने नाम में उसने सुरक्षित कर लिया था। पर्याप्त वस्त्र जेवर आदि उसके पास उपहारस्वरूप इकट्ठे हो ही गए थे। अनेकों उत्सवों और भोजों में सम्मिलित होकर और वहां समाज के विशिष्ट पुरुषों

तथा स्त्रियों से अहमियत पाकर उसकी महत्त्व और गुरुत्व की भावना तप्त हो गई थी। समाज की कथित उच्च पंक्ति को समझने में उसे देर न लगी और आज वह अपनेमें हीनभाव से ग्रस्त न थी।

जब से उसे प्रबन्धक किशोरीलाल से यह संकेत मिला कि रंगभूमि का कार्य चाहे जब अनिश्चित परिस्थितियों के कारण बन्द हो सकता है, वह अपने भविष्य के लिए और भी अधिक सतर्क हो गई थी। वास्तविक तथा विशिष्ट कलाकारों से घनिष्ठ परिचय प्राप्त कर लेने के बाद उसने जीवन का एक अपना दर्शन-सा बना लिया था। परिभाषाएं कुछ भी हों, जीवन की विशेष परिस्थितियों और वस्तुस्थिति को समझने में अब उसे अधिक परेशानी और दिक्कत नहीं होती थी। इधर कई दिनों से वह अपने भविष्य के लिए चिन्तित तो नहीं, मगर विचारशील और मननशील अवश्य थी। उसे रह रहकर अपने ही जैसी अन्य अभिनेत्री बहिनों की जीवन-कहानियों का खयाल हो आता था और वह नहीं चाहती थी कि अपने भविष्य-जीवन में उसको भी उनकी विषम अपमानजनक और असहनीय परिस्थितियों का सामना करना पड़े। अपना अतीत उसके लिए अपना पथ प्रदर्शक, अनुभव के दृष्टिकोण से था। आगत में जो कुछ उसकी आंखों के सामने गुज़र रहा था वह उसे सही मार्ग दर्शन देने के लिए पर्याप्त था। सिर्फ अनागत—भविष्य—के लिए उसको निश्चय करना था कि जीवन-नैया किस तरह चलाई जाय।

इधर कई दिनों से अनेकों पुरुष युवक, अधेड़ वृद्ध भी उसे जीवन साथी के रूप में ग्रहण करने की याचना कर रहे थे। आवेश, भावना और चिन्तन में अब वह अन्तर समझती थी। इन सबके ऊपर वह याचक के लिए अपनी आवश्यकता को अधिक महत्त्व देती थी। अनुभव के आधार पर अब वह इस निश्चय पर पहुंच चुकी थी कि जीवन में अभाव अथवा आवश्यकता का कारण अथवा प्रतिकारक ही अन्ततः आवेश भावना और चिन्तन के सर्वोपरि है। जीवन को अनिश्चित मानते हुए भी स्वनिर्मित एक निश्चित परिस्थिति में वह अपना जीवन निर्वाह करने की कामना कर रही थी।

और आज इसलिए जब राजस्थान के एक भूतपूर्व जागीरदार जिनका इधर कई महीनों से पूर्णिमा से परिचय था, आये उसने उन्हें विशेष बात चीत के लिए ठहरने का आग्रह किया। वह बोली—

"जनाब की तबियत हाजिर हो तो अज करू ?

"एहसान फरमाइये।'

'आपको याद हो, शायद, आपने एक दिन कहा था कि आपको मेरे जीवन म दिलचस्पी है।"

"जी।'

"वह मेरे साथ मजाक तो नही था ?"

'बिलकुल नही। यह तो मेरे जीवन की हसरत है।'

"आज भी ?'

"क्या नही !"

"आपका उसमे मतलब क्या था ?'

"मुझे जीवन साथी की जरूरत है और यदि आपको आपत्ति न हो तो मैं आपको पाकर अपने-आपको बहुत भाग्यवान समझूगा।

"पर, आपके तो पत्नी है ? आप चुप क्या हैं ?"

"पत्नी है। हमारा दाम्पत्य जीवन सुखी नही है।"

'कारण ?"

"मैं भौतिकवादी हू। मेरी पत्नी धार्मिक और आदशवादी है।'

'मेरा ऐसा विश्वास है कि हर पुरुष—जहा जीवन म साथ का सबध है—आदशवादी होता है।'

"यह व्यक्ति व्यक्ति पर अलग-अलग तरह स आश्रित है।'

"खैर ! आपको मुझम क्या बात अच्छी लगी ?

"आप मेरे जीवन के अभाव की पूर्ति कर सकेंगी।"

'कैसे ?'

'अपने यौवन से—सौन्दय स। उनके प्रभाव स, अपने स्वभाव से।"

"बस ?

"इससे अधिक मुझे जानने की जरूरत नही है।'

'पर आप मुझे नहीं जानते। मेरे पूव-जीवन से भी परिचित नही हैं।"

"मैं अतीत में विश्वास नही करता और यदि करता हू तो इतना ही कि वह आगत का—वतमान का पूवरूप है। आपको देखकर मैं आपके मन को बुरा नही समझता। अपने प्रयोजन के लिए मुझे इससे अधिक विचार

करने की जरूरत नही है।'

"यदि मैं कहू कि मेरे परिवार का कोई पता नही है।'

"मेरे लिए यह और अच्छा है। आपका ध्यान मेरे अलावा और कहीं केंद्रित नही होगा।

"पुरुषो को प्राय नारी के अनेक पुरुषो से सम्बध होने की बात बुरी लगती है।

'पुरुष स्वार्थी है। उसके लिए यह स्वाभाविक है। अप्राप्य की प्राप्ति के लिए ये सब स्वार्थ पुरुष को छोडने पडते है।

"आप छोड सकेंगे ?'

"निश्चय ही।'

'यह जानते हुए कि मेरा अनेक पुरुषो से सब तरह का सम्बध रहा है, आज भी है क्या फिर भी आपको मुझे अपना साथी बनाने में आपत्ति नही है ?

'निश्चय ही नही।'

'यदि मेरी पूर्व परम्पराए मेरे भविष्य में परिवर्तन न ला सकी तो क्या आप उस परिस्थिति को सह सकेंगे ?

"मुझे सिर्फ दुःख होगा।

क्या आप किसी अपनी रमणी को समाजहीन रखने में अपनी इज्जत समझते है ?

'बिलकुल नही।

आप मेरा मतलब समझ गये ?

शायद समझ गया हू। पूर्णिमा ने देखा चाय सामग्री आ गई है। वह बोली— लीजिये पहले चाय पी लीजियेगा। और इतना कहते हुए उसने अपनी सेविका को कमरे में आने का आदेश दिया। सेविका के पुन बाहर चले जाने के बाद उसने चाय बनाई। प्याले को ठाकुर साहब [को पकडाते हुए बोली—

"मैं और आप दोनो अलग अलग वंश-परम्पराओ में पले हैं। मेरा जीवन एक स्वतन्त्र पक्षी का रहा है जिसकी कभी कोई डाली घर रही है और कभी कोई। इधर कुछ दिनों से एक पेड की छाया में बैठ पाई हू। आशि

याना आज भी नही है। कुछ तिनके इकट्ठे अवश्य हो गये हैं, पर देखती हू कि सिर्फ चन्द तिनकों से आशियाना नही होता। घर नही बनता। उसके लिए एक साथी की आवश्यकता होती है। साथी वह है जो जीवन को प्रवाह दे। स्वय उसमे बहे। प्रवाह को रोके नही। तटो की ओर अकेला देखे नही। दूर रहे, नजदीक रहे साथ रहे पर दृष्टि उस पक्षी की तरह हो जो परवाज मे भी अपनी नजर नीड पर रखता हो, अपने साथी पर रखे।'

"आपके विचारो के लिए मेरे हृदय म स्थान है।'

'आपने ठीक फरमाया। परतु ठाकुर साहब! रूप और यौवन स्थायी नही हैं। यौवन के साथ, मैंने देखा है, रूप भी चला जाता है। यौवन का ही दूसरा नाम सौन्दय है, यदि यह कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। बीमारी के अदृश्य कीडे भी सौन्दय नाश का कारण बन सकते है। यदि मेरे रूप यौवन के प्रभाव के कारण ही आप मेरी ओर आकर्षित हुए है तो सभव है वह आकर्षण मुझमे न रहे और फिर हमारा साथ भी न निभे।'

"आप असभव परिस्थितियो के अस्तित्व की बात करती हैं।'

'परन्तु परमात्मा न करे, यदि ऐसी घटनाए घटित हो जायें जिससे हमारा साथ न चले फिर क्या होगा ?"

'हर परिस्थिति मे मैं आपकी इच्छा का सम्मान करूगा। आपको पाकर मैं सवस्व पा लूगा। मेरी अन्य कोई माग न है न होगी।'

'पूर्णिमा सुनकर कुछ क्षण के लिए चुप हो गई। अपनी बातचीत म उसने व्यावहारिकता के अनेक पहलुओ का स्पश कर लिया था। कुछ विरम कर बोली—

"साथ चलने मे असमथ होने पर हम अलग भी तो हो सकते हैं।'

'अपने हृदय से मैं यह न चाहूगा। मेरे मुह से यह बात न निकलगी।"

"आपका 'बजट' क्या है ?"

'किसलिए ?'

'मेरे लिए।'

'वह आप स्वय बना लें।"

फिर भी ?'

"इसके लिए मुझे विशेष सोचने की आवश्यकता नही है।

कोई योजना तो मेरे लिए आपने सोची होगी ?

'मेरी योजना मे अब तक एक ही शब्द रहा है। सर्वसमर्पण ! सर्व अर्पण !"

'तुच्छ व्यक्ति बड़े शब्द, बहुत बड़ी भाषा नही समझते, ठाकुर साहब ! अपने समझने वाली छोटी बात वे सुनना चाहते है। नारी पुरुष का हाथ उसे आश्रय देने के लिए नही पकड़ती, वह उससे प्रश्रय पाने के लिए उसकी सहचारिका बनती है। उसे समझाने के लिए आप भी उसी के स्तर की छोटी बात उससे कहिये जिससे वह समझ सके। कहा उसका निवास होगा किस प्रकार वह अपना निर्वाह चलायगी कहा तक उसे खर्च करने की छूट होगी, जीवन को किन आवश्यकताओ की चिन्ताओ से उसे दूर रखा जा सकेगा, उसके निवास, रहन सहन का क्या स्तर होगा क्या उसकी सुरक्षा का प्रबन्ध होगा सम्भावित सकट काल म वह आत्मनिर्भर किस तरह रह सकेगी—आदि प्रश्न ऐसे हैं जिसके उत्तर ही उसे अपनी स्थिति समझने म मदद कर सकते है। एक नारी के प्रसग म ये प्रश्न उसके जीवन की समस्याएं हैं जिस पर उसकी सामाजिकता आश्रित है। अपने साथी के प्रति उसकी भावात्मक स्थिति भी उपरोक्त भौतिक परिस्थितियो से बहुत-कुछ अशो म सलग्न है।

'सम्भव है, आप ठीक कहती हैं।

और यह इसलिए भी जरूरी है कि वह अपनी विशेष स्थिति म कुछ करने की स्वतन्त्रता महसूस करे साधारण-साधारण बातो के लिए परेशानी का कारण न बने और साथ ही अपनेको दासता की सीमा म प्रवेश करने से बचा सके।'

देवी पूर्णिमा ! जिन परिस्थितियो और समस्याओ का आपने जिक्र किया है वे न मेरे मस्तिष्क म थी न हैं। पर मैं उन्हें केवल मस्तिष्क की उपज भी नही मानता। इनके सम्बन्ध म भी मैं आपकी इच्छा को ही सर्वोपरि मानता हूं। जब बात आ ही गई तो क्या मैं सुन सकता हूं कि इनके सम्बन्ध म क्या योजना आपको सन्तुष्ट कर देगी ?

ठाकुर साहब ! मैंने व्यापार की बात नही की। इस सम्बन्ध म सौदेबाजी होनी भी नही चाहिए। आपके साथ अपनी स्थिति समझने मात्र

के लिए मैंने इन प्रश्नों की ओर आपका ध्यान आकर्षित किया था। बाद में वे ही प्रश्न आपके और मेरे लिए परस्पर में समस्याएं न बन जायें इसी लिए इन्हें आज उठा दिया है। क्षीण बुद्धि और हीन स्रोत होने के कारण मेरा किसी ऐसी योजना के प्रति एक उदार व्यक्ति की तरह समुचित और सुलझा हुआ दृष्टिकोण भी तो नहीं हो सकता। इसीलिए "

"इसीलिए क्या ?"

"इसीलिए योजना आप दें, इसीमें मैं अपना कल्याण समझती हूं।'

कुछ क्षण के लिए कमरे में चुप्पी छा गई। ठाकुर साहब के चेहरे पर मुस्कराहट थी। पूर्णिमा के चेहरे पर एक अपराध, एक स्वार्थ की छाया कभी-कभी झलक जाती थी। कुछ क्षण विरमकर वे बोले—

'देवी पूर्णिमा ! सुनो। आज जिस मकान में अभी बैठे हम बातें कर रहे हैं यह मकान मैंने कुछ ही दिन पहले उसके मालिक से साठ हजार रुपये में खरीद लिया है। यह मकान आज से आपका है। आवश्यक दस्तावेज की तकमील में आपके नाम मैं आज करा दूंगा।

"ठाकुर साहब !"

'सुनो पूर्णिमा देवी ! मैंने योजना निश्चित कर ली है। सम्पूर्ण सुनने के बाद जो आवश्यक समझ वह तब्दीली आप उसमें कर सकती हैं। इस मकान का अन्य आवश्यक तामीर में जिसे आप मुनासिब समझें जो भी खर्च लगेगा वह सब मेरी जिम्मेदारी होगी। अपनी आवश्यकता और रुचि के अनुसार आप इसे सजा सकती हैं जिसके लिए आपको व्यक्तिगत खर्च कुछ भी न करना पड़ेगा। इसके अलावा मेरी पूर्व जागीर के गांव में मेरा एक बाग और कोठी है वह मैं आज ही आपको उसकी कुल सजावट के साथ, उपहारस्वरूप देता हूं। यह हुई आपके आवास निवास प्रवास की व्यवस्था। स्थायी चल-सम्पत्ति के रूप में आज ही पांच लाख रुपये आपके नाम मैं आपके बैंक के खाते में जमा करा दूंगा। जवरात और वस्त्रों के लिए अतिरिक्त साठ हजार आज शाम से पहले आपके पास पहुंच जायेंगे। इस समय यदि मुझे यह अंगूठी अपने हाथ से आपकी अंगुली में पहिनाने की इजाजत दो तो मैं अपने आपको धन्य समझूंगा।

और यह कहते हुए ठाकुर साहब ने अपने हाथ की अंगूठी पूर्णिमा का

हाथ पकड़कर उसकी अंगुली में पहना दी। पूर्णिमा के मुंह से क्षीण-सी एक चीख निकल पड़ी। वह बोली— ठाकुर साहब !" मगर उसने सुना—

'देवी पूर्णिमा ! यह एक दोस्त का तुच्छ उपहार है। किसी चीज़ की कीमत नहीं है। आपने मुझे जो कुछ दिया उसकी कीमत हो भी नहीं सकती। कल आपका और मेरा साथ हो या न हो, आज जो आपने मुझे स्वीकारने की बात कही है जो प्रस्ताव रखा है वही मेरे लिए काफी है। आज आपके लिए धनी पुरुषों की कमी नहीं है। ऐसे लोगों का समूह भी मुझे मालूम है जो आपके एक प्रस्ताव पर अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को तैयार है। मैंने जो आज अभी आपको नज़र किया उससे मेरी आर्थिक स्थिति में कोई अन्तर नहीं आ सकता। इसलिए आप उसे स्वीकार कर मुझे कृतार्थ फरमावें। मेरी आज यह सबसे बड़ी खुशी है कि इस महानगरी के लाखों पुरुषों के मुकाबले मैं आपके सबसे नज़दीक हूं।

'परन्तु ठाकुर साहब ! मैंने तो अभी कुछ निश्चय नहीं किया। एक मन में उठी इच्छा का इज़हार मात्र आपके सामने किया था। आप मुझे शर्मिन्दा न करें।

देवी पूर्णिमा ! मैं चाहता हूं कि आप मेरी भावनाओं तक पहुंच सकें। यह मेरा तुच्छ उपहार आपके अपने सम्बन्ध के निश्चय में यदि कोई बाधा लाएगा तो इसमें मुझे कोई खुशी न होगी। मेरे स्वार्थहीन उपहार की जगह पर खड़ी होकर बिना किसी मजबूरी के स्वेच्छा से जो भी निश्चय आप लेंगी वही आपका हार्दिक निश्चय होगा। ऐसी स्वेच्छा से प्रेरित प्रस्ताव ही उस सौभाग्यशाली का चयन करेगा जो आपके सौजन्य से प्राकृतिक रूप से सम्बद्ध हो। यही मेरी हार्दिक कामना है। मुझे और कुछ नहीं कहना।

बात समाप्त हो गई। पूर्णिमा ने अपनी गर्दन ठाकुर साहब के वक्षस्थल पर रख दी थी। साथ ही उसकी बाहें उनके गले का हार हो गई। उन्होंने उसे अपना लिया।

९

पूर्णिमा और ठाकुर साहब के बीच जो बात हुई उसका आभास बहुत शीघ्र लोगों को मिल गया। अनेकों ने तो उनके इस सम्भावित मिलन पर बधाइयां तक दे दीं। महानगरी के मुख्य बाजारों में साथ-साथ जाना, वस्तुओं की खरीद के समय एक दूसरे की सम्मति लेना परस्पर एक दूसरे के प्रति आत्मीयता का प्रदर्शन आदि कुछ ऐसे तथ्य थे जो विवेकशील व्यक्तियों और विशेषकर संवाददाताओं की नजरों से बच नहीं सकते थे।

आज शाम को प्रबन्धक किशोरीलाल की ओर से एक बहुत समारोह का आयोजन किया गया था। पूर्णिमा और ठाकुर साहब दोनों को इसकी पूर्वसूचना थी। भोज, नाच रंग, गाना गोष्ठी—सभी इसके कार्यक्रम पर थे। रंगभूमि मे सम्बन्धित सभी कलाकारों, कर्मचारियों, सहयोगियों, सहायकों के अलावा शहर के अनेकों ख्यातिप्राप्त विचारकों, दार्शनिकों, राजनीतिज्ञों, साहित्यिकों कवियों चित्रकारों, मूर्तिकारों संवाददाताओं आदि को इस समारोह की सफलता में योग देने तथा इसकी शोभा बढाने के लिए आमन्त्रित किया गया था। प्रबन्धक किशोरीलाल की यह योजना थी कि उनके द्वारा आयोजित यह समारोह कला और संस्कृति का संगम बने। इसे विशेष महत्त्व और चमक-दमक देने के लिए शहर के उच्च श्रेणी के शोभाचारी समाज को भी इसमें सम्मिलित होने के लिए विशेष निमन्त्रण भेजे गये थे। प्रबन्ध और प्रदर्शन के इस विशेपन की देखरेख में प्रस्तावित समारोह की सफलता सुनिश्चित थी।

प्रबन्धक किशोरीलाल के ध्यान में यह बात थी कि ऐसे समारोह की सफलता का बहुत कुछ श्रेय इसके अनुकूल उपयुक्त स्थान पर आश्रित है। इसलिए इसके लिए उसने एक ऐसे स्थान का चयन किया था जिसमें विशालता के साथ अन्य उपयुक्त सुविधाएं भी थीं। सुन्दर सरोवर कृत्रिम पहाड़ियां, विभिन्न रंगों में फूलों की क्यारियां, हरियाली से आच्छादित प्रान्त

माग, तरह-तरह के फून पौधा म सजे गमले, हरी झाडिया से घिरे दास्य श्यामल मैदान इस स्थान की बाह्य विशेपताए थी। आवास निवास क लिए अनेको विशाल हवादार कमरे थे।

इसके भोजन-क र और कला-कक्ष सबमे अपना विशेप महत्त्व रखन थ। इनकी विशालता तथा सजावट अद्वितीय थी।

भोज-कक्ष म उपयुक्त स्थाना पर अनेका विशाल दपण दीवारा पर सुसज्जित थे। उनम सुरुचिपूर्ण ढग से इसकी छन पर लगे अनेका नाना दीप प्रतिबिम्बित हो रहे थे। दीवारा पर कई जगह इस कक्ष म हुए भोजा के चित्र थे। फश सुन्दर कालीन से आच्छादित था। सज कुर्सिया उसकी सजावट इस कक्ष की विशालता और सुन्दरता के अनुरूप थी।

इसका कला-कक्ष स्वय सरस्वती के सजाए अपन कला मन्दिर की तरह था। हलके रग से रगी दीवारा पर बडे बडे कलाचित्र सुसज्जित थे। फ्रास, इटली, जमनी और भारत की विभिन्न शलिया विभिन्न चित्रा के रूप म यहा प्रतिनिधित्व पा रही था। उपयुक्त स्थाना पर सज विशाल दपण प्रस्तुत सौन्दय को अपनम समटकर पुन एक नई छवि क साथ प्रतिबिम्बित कर देते थे। फश पर बिछे कालीन खिडकिया और दरवाजा पर लगे पर्दे विशाल स्थाना पर रखे हुए आसन कोना म रखी मूर्तिया उनक आसपास और अन्य उपयुक्त स्थाना पर सजे हुए धातु गमला की पुष्पित छाया-कृतें इस कक्ष क कलापूर्ण वातावरण को और भी अधिक मनमोहक बना रह थ। इस कक्ष मे एक ऊचे आसन पर सजाए हुए सगीत-साजा को देखकर किसी व्यक्ति को इसे स्वय सरस्वती का मन्दिर कहने म आपत्ति नहीं हो सकती थी। था।

स्वय प्रबन्धक विशारानाथ को स्थान के इस अपार वैभव पर गर्व था। इस सुन्दर समारोह के लिए यही स्थान तथा भूमिका का आत्मनिर्णय उपयुक्त हो रहे थ। उसने महत्त्व की जानी ... उस आत्मविश्वास म उपयुक्त समझकर लिया था। सगाधना न अनेक ढग से उसकी सफलता म निर्णय म उसम स मालूम हुआ परन्तु लिए म य सारे प्रसाधन मात्र हुए थ। ज्या ही सन्ध्या न अपना ... महात्मा पर ... उसके ... वातावरण म ... बार महत्वाना न यह अनुभव किया कि ... है। विजना का प्रकाश किरणा न ... नई चेतना ...

इनमे सबत्र यौवन सचारित और प्रवाहित कर दिया। अब इस स्थान की एक एक वस्तु मे अपना विशेष आकर्षण था। सारा स्थान विशेष प्रकार की आकर्षक प्रकाश बत्तियो मे समय से पूर्व सन्ध्या के आगमन के साथ-साथ प्रकाशित कर दिया गया।

प्रबन्धक किशोरीलाल ने समारोह म आमन्त्रित अतिथियो के स्वागत के लिए एक विशेष समिति पहले से ही सयोजित कर ली थी। कौन किस पोशाक म होगा, कहा खडा रहेगा, किन शब्दो स आगन्तुक का स्वागत करेगा, किस तरह साथ जाकर उसे उपयुक्त स्थान पर बैठायगा, क्या कह कर अतिथि की आवश्यकता मालूम करेगा, किस तरह अपनको पश करगा, किस तरह उत्तर निवेदन करेगा, किस तरह वाछित वस्तु पेश करगा क्या कहकर सम्बोधित करगा आदि अनेक प्रश्न अपनी समिति म बैठकर उसने पूरे विवरण के साथ अपने सहयोगियो के साथ विचार विनिमय करके हल कर लिए थे। अपनी योजना को सम्पूर्ण रूप से क्रियान्वित करने क के लिए समिति के सब सदस्यो न अपने आपको एक प्रगतिशील अनुशासन म सयोजित कर दिया था।

प्रबन्धक किशोरीलाल को अपनी सफलता पर पूर्ण विश्वास था। अतिथियो का उनके निमत्रण पत्रो म आठ बजे शाम का समय समारोह स्थान पर पहुचने के लिए दिया गया था। आठ बजते-बजते अतिथिगण आने लगे। आदर्श मौसम होने के कारण यही उचित समझा गया कि उन्ह प्रारम्भ म खुले मदान म ही बैठाया जाय। उनके लिय पहले से ही यहा कुर्सिया 'सोफे' और उनके पास छोटी छोटी मेजें महमानो की सख्या का ख्याल करते हुए, एक योजना से रखे हुए थे। प्रत्यक को बैठने के बाद एक औपचारिक नतमस्तक के साथ शीतल जल की मनवार हो जाती थी। और किसी सेवा के लिए साथ ही निवेदन प्रश्न कर दिया जाता था। शनै शनै मदान भरन लगा। मेहमानो की वृद्धि के साथ-साथ सेवको उपसेवको और स्वयसेवको की सख्या बढती सी दिखाई दी। मेजबान कार्यरत होते हुए भी अपनी औपचारिकता म स्वतत्र से प्रतीत होते थ। किसी रेडियोग्राम के ध्वनि प्रसारक यत्र स हलका-हलका सगीत प्रस्फुटित हो रहा था। वायु फूलो की मादक सुगन्धि से भारी था। अनेक इत्रो की मधुर सुगन्धि इस

जरूरत नहीं थी। उसके दृष्टिकोण से सामाजिक भोज, समारोहों का प्राथमिक महत्व पारस्परिक मिलन की अवसर प्रदानता में था न कि उनकी भोजन प्रचुरता और महत्ता में। प्रयोजन और सिद्धांत की दृष्टि से मिलन से इतर सारे महत्त्व गौण थे।

पूर्ववर्णित भोज-कक्ष में विविध भोजन सामग्री अनेक मेजों पर सुसज्जित रखी हुई थी। पूर्णिमा ने एक प्लेट व चम्मच लेकर यथेच्छा सामग्री उठाकर अपनी प्लेट में डाल ली और उसे लेकर एक ओर होकर उसमें से खाने लगी। सभी ने यह क्रम दोहराया। खाना प्रारम्भ हो गया। मेज पर रखी जिन प्लेटों अथवा स्थालिकाओं की सामग्री समाप्त हो जाती सेवक पुनः रिक्त स्थालिका को उठाकर उसकी जगह भरी स्थालिका रख देते। इसी तरह सारी मेजों पर उठान रखने का क्रम चलता रहा। ज्यों-ज्यों खाने में शिथिलता आई मेहमान परस्पर बातें करने लगे। पूर्णिमा की मनवार करने में मेहमान अपना गौरव समझने लगे। मनवार स्वीकार कर लेने पर उनकी खुशी का ठिकाना न रहता। कक्ष के दर्पणों ने पूर्णिमा की सौन्दर्यश्री को वहां सर्वत्र सुलभ कर दिया।

अपनी आदत के अनुसार पूर्णिमा ने परिचित चेहरों की तलाश में इधर उधर चारों तरफ इस कक्ष में अपनी नजर दौड़ानी शुरू की। इस समय इसके साथ प्रबन्धक किशोरीलाल थे। किशोरीलाल को यह मालूम था कि पूर्णिमा के परिचितों में कौन-कौन इस समारोह में उपस्थित हैं। इसलिए वह उसके साथ हो गया। कक्ष के एक कोने में उसे चित्रकार कुमार दिखाई दिये। उन्हें देखते ही किशोरीलाल पूर्णिमा का हाथ पकड़कर उसे उसके पास ले गये।

"जानती हैं इन्हें?"

"इन्हें कैसे भूल सकती हूं।

"ख्याति पाकर शायद।

वह मेरी हीनता का निम्नतम स्तर होगा।

आक्षेप के लिए क्षमा चाहता हूं।

आपको मुझे सब कुछ कहने का अधिकार है। आप कैसे हैं?

सब कुशल है।

'कामकाज ?'

'सब ठीक है।

"कोई नई कृति ?"

'तुम्हारे साथ सब प्रेरणा चली गई। नई रचना कहा से लाऊ ? तुम बहुत बडी हो। मुझ गरीब म समालन की शक्ति कहा है ?"

अब मैं अकेली नही हू।'

'य" सारा समाज आपके साथ है।'

'नही। मैंने घर बसाने का निश्चय कर लिया है। आपको पता "गाय", इसलिए नही चला कि आपने मुभम दिलचस्पी कम कर दी है। मिलिये ठाकुर साहब।

पुकारने स ठाकुर साहब नजदीक आ गय। पूर्णिमा बोली—

मेरे पुराने मालिक, अन्नदाता श्री कुमार।'

जयसिंह ! आपकी दोस्ती का भिखारी।' ठाकुर साहब ने कुमार से हृदय मे हाथ मिलाया।

आप बडे सौभाग्यशाली हैं।

दरअसल यही तो मेरा सौभाग्य है। ठाकुर जयसिंह ने पूर्णिमा की ओर सकेत करते हुए कहा। सब मुस्कराने लगे। पूर्णिमा बोली—

'कुमार साहब ! आपके नाम म जादू है।"

"आप जिसमे जादू भर दें।

बचपन से मैं इस नाम से परिचित हू।'

'फिर ?

मेरी तरह वह भी एक बदनसीब था। वर्षों बीत गये उसका कोई पता नही है। शक्लें बदल गई। अब मिलने पर भी हम एक दूसरे को नही पहचान सकते।

'चलो, किसी बदकिस्मत के बहाने आपको याद तो आ जाता हू।'

'मेरे लायक सेवा ?' इतने म ही उसने सुना—

'हमारे 'हृदयराजी' स तो मिलिये। आवाज प्रबन्धक किशोरीलाल की थी।

"नमस्ते, पडितजी।

"कहिए, मिजाज गुण हैं ?"

'आपकी कृपा।

'मुझे गर्व है कि तुम्हारे निर्माण में मेरा योग रहा है।'

"अवश्य ! इसमें गर्व ही क्या है ?

'मंच पर तुम्हें 'मालविका' के रूप में मैंने उतारा और कोई नहीं पेश कर सकता था।'

निश्चय ही।'

'पर इसे मैनेजर साहब भूल गये।'

मैं तो नहीं भूली हू।

"यह भी मालूम हो जायगा।

अच्छा, नमस्ते। पूर्णिमा ने कदम आगे बढ़ा दिये। प्रबन्धक किशोरी लाल ने उसे सूचना दी कि भोज प्रायः समाप्त हो चला है और मेहमान कक्ष-कक्ष में आने के लिए उतावले हो रहे हैं। पूर्णिमा ने उसके आदेश का पालन किया।

पूर्णिमा को आगे लेकर प्रबन्धक किशोरीलाल सर्वप्रथम इस कक्ष में प्रविष्ट हुए। शीघ्र ही सारा समाज सहूलियत से इसमें आकर यथास्थान बैठ गया। शोभाचारी समाज की अनेक रमणियां पूर्णिमा का परिचय प्राप्त करने और उससे वार्तालाप करने के लिए व्याकुल हो रही थीं। नई मुलाकात के लिए क्योंकि यही समाज उपयुक्त था इसलिए उनके परिचय की व्यवस्था यहीं की गई थी। यहां सबको यथास्थान शांतिपूर्वक बैठ जाने के बाद पूर्णिमा रमणियों के बीच उनका परिचय प्राप्त करने और वार्तालाप के लिए गई। पूर्णिमा ने उच्च समाज की इन रमणियों को उनके घर, बच्चों एवं रुचियों के सम्बन्ध में प्रश्न किये। मगर उसे हैरानी थी कि दूसरी ओर से जो भी सवाल उससे पूछे गये थे सारे उसके रूप सरक्षण और रूप-सज्जा के सबंध में थे। फैशन की इन पुतलियों से वह कुछ ही क्षणों में परेशान हो गई और उसे इन कुछ ही क्षणों में उनके जीवन और समाज के प्रति दृष्टिकोण का आभास मिल गया। उसे उनके जीवन में वही ... कुछ माह पहले वह स्वयं महसूस करती थी।

... पूर्णिमा अपने पाँव बढ़ाती उपस्थित

समाज की आखें उसी ओर घूम जाती। उसके इधर उधर घूमने मे दर्पणो मे सौन्दर्य सजीव हो उठता था। इस कक्ष मे सर्वत्र कला, रूप, यौवन के रगो की लहरें-सी उठ रही थी और स्थानीय दर्पणों में प्रतिबिंबित होने से उनमें और भी अधिक निखार आ रहा था।

इधर कई महीनो से पूर्णिमा को विभिन्न जीवन की विभिन्न समस्याओ की ओर—उनकी सगतियो-असगतियो की ओर—दिलचस्पी बढ गई थी और जब भी उसे अवसर मिलता एक छात्रा की तरह प्रश्न करके उस पर मनन करके वह उनकी वास्तविकताओ की तह मे पहुचने की कोशिश करती। अभाव का जीवन, मझले का जीवन वह देख चुकी थी। घर का, अपनो का प्यार उसे मिला नही था। रोशनी मे आकर उसे यह अनुभव हो गया कि उच्च कहा जाने वाला समाज महज आदर्शों की बात करता है, मगर पतन की हीनतम सीमाओ का स्पर्श करने के लिए प्रतिपल अग्रसर रहता है। उसके जीवन मे इस विज्ञापन की रोशनी के जीवन मे, प्रस्तुत नाटकीय जीवन मे अनेकों राजनैतिक कार्यकर्ता व्यापारी प्रसिद्धि-प्राप्त विद्वान लेखक, अफसर, वकील, डाक्टर जज कलाकार, सपादक उद्योगपति अध्यापक आदि-आदि आये, मगर किसी ने उस पर यह छाप नहीं छोडी कि सिवाय धन प्राप्ति के उनके जीवन का और भी कोई उद्देश्य रहा है। इसीलिये ऐसे व्यक्तियो के प्रति उसकी रुचि कम हो गई थी, उदासीनता बढ गई थी। उत्सवो के ऐसे अवसरो पर ऐसे व्यक्तियो से उसका मिलन महज औपचारिक था। ऐसे समारोहो मे उसे ऐसे व्यक्तियो की तलाश रहती थी जो उसे जीवन के प्रति नया दृष्टिकोण दे सकें। जो उसके स्तर पर अन्य मानवीय मूल्यो का निरूपण और व्यवहार कर सकें वे ही व्यक्ति उसकी वर्तमान स्थिति मे उसके आकर्षण के कारण थे। पूर्णिमा के यह इल्म मे था कि प्रस्तुत समारोह मे ऐसे अनेको व्यक्ति तशरीफ लायेंगे जिनके जीवन के प्रति वास्तविक मूल्यो मे कोई शक नही किया जा सकता। ऐसे व्यक्तियों से मुलाकात अथवा उनसे चर्चा लाभ समारोह के कार्यक्रम का एक अग नही हो सकता यह वह अच्छी तरह जानती थी।

मेहमानो को व्यस्त रखने के लिए प्रबधको ने नाच-गायन का कार्यक्रम रखा हुआ था। इसलिए वे ज्यो ही अपनी-अपनी जगहो पर आसीन

हो गये। गाना प्रारंभ हुआ। सर्वत्र शान्ति छा गई। सब लोग ध्यान से सुनने लगे। मगर कुछ ही देर बाद परस्पर बातें होने लगीं। कार्यक्रम चलता गया, बातें भी चलती गईं। ज्यों ही गायक ने समाप्ति का संकेत किया सर्वत्र तालियां गूंज उठीं। नाच प्रारंभ हुआ। इसी तरह यह तालियों के साथ समाप्त हुआ। कार्यक्रम के बीच में चाय और काफी के दौर चल गये। धीरे धीरे दो-दो चार चार करके मेहमानों ने छुट्टी लेनी शुरु की और देखते देखते, समय के बीतते बीतते कला-कक्ष में केवल कुछ चुने हुए व्यक्तियों का समाज रह गया।

पूर्णिमा ने कक्ष की दीवारों पर रंग कलाचित्रों को प्रवेश करते समय सरसरी निगाह से देखा था। अब उसकी इच्छा हुई कि वह उनकी कला को समझे। अपने पुराने परिचित मेहरबान श्री कुमार को साथ लेकर वह एक चित्र के पास जा खड़ी हुई। पूछा—

इसकी क्या खूबी है?

'यह तो इसको बनाने वाला ही बता सकता है।

'इन सारे कलाचित्रों के विषय में आपके ये ही उत्तर होंगे?

'संभव है।

फिर एक अनभिज्ञ की आप क्या सहायता कर सकते हैं?

'देवी पूर्णिमा! मुझे प्रबंधक महोदय से कुछ ही समय पहले मालूम हुआ है कि इस समारोह की शोभा बढ़ाने के लिए गुरुवर विश्वबंधुजी ने यहां पधारने का वचन दिया है। मेरा विश्वास है कि वे यहां अवश्य आयेंगे। उनके आने तक यदि तुम अपने प्रश्नों को सुरक्षित रखो तो मेरी आशा है कि तुम्हारी जानने की बहुत-कुछ कामना पूरी हो जायगी।

और यदि नहीं हुई?

तो मैं समझता हूं कि या तो तुम किसी बहम के लिए प्रश्न करती हो अथवा स्वयं बहुत ज्यादा जानती हो।

किसी बात को टालना हो तो कह आसान मार्ग।

और किसी का सीखना हो तो वह आवश्य।

फिर भी मुझे तो आप मिश्र हो सकते हैं।

'श्री पूर्णिमा! वास्तव में बात यह है कि दर्शक समस्त चित्रों का

समझने के लिए भारतीय साहित्य और संस्कृति की एक ठोस पृष्ठभूमि चाहिए। उसके अभाव में इन चित्रों के चमत्कार को हृदयंगम नहीं किया जा सकता। मैंने यह कहकर कोई असत्य या असंगत बात नहीं कही कि तुम्हें गुरुवर विश्वबन्धु के यहां आने तक अपने प्रश्नों को सुरक्षित रखना चाहिए। यहां पर अनेक व्यक्ति केवल उनके आने की प्रतीक्षा में बैठे हैं। तुम स्वयं देखोगी कि किस प्रकार उनके साथ साथ एक ज्ञान-सागर चलता है जिसमें उतरकर, गुनकर, स्नान अथवा श्रोता अपने को कृतकृत्य समझने लगता है।

'सर! यह जो संगीत हुआ उसके लिए आप क्या सोचते हैं ?'

संगीत हुआ ही कब ? इसे अब भी तुम संगीत कहती हो ? हो हल्ले में कभी संगीत होता है। संगीत के दौरान में श्रोतागण कभी परस्पर बातें करते हैं ? पश्चिमीय पद्धति में ऐसी कोई कला होती होगी जहां श्रोता आपस में बाधक न होता हो। भारतीय संगीत शास्त्र के अनुसार तो गायक और श्रोता में एक पारस्परिक आत्मिक संबन्ध होना आवश्यक है। उसके अभाव में तो संगीत की भूमिका भी नहीं बनती। संदर्भ आ गया उस चित्र का देखो।

और इतना कह वह उसे पास के ही एक अन्य कलाचित्र के पास ले गया। उसकी ओर संकेत करते हुए उसने कहा—

यह भारतीय संगीत की परम्परा है। गायक और श्रोता समक्ष और अनुभूति के एक ही धरातल पर जैसे स्थित हैं। दोनों एकरस हैं, एक आत्मा हैं। श्रोता के लिए विषय बोधगम्य है। जैसे आनन्द ही आनन्द है। परमानन्द की प्राप्ति में जैसे दोनों खो से गये हैं। पर संगीत के नाम पर आज जो सुना या जो अक्सर ऐसे उत्सवों पर सुनाया जाता है वह तो एक आपत्तिजनक वस्तु है। कुत्सित कला के, भ्रष्ट संस्कृति के ये अतिरेक मात्र हैं। देखा नहीं तुमने ? न गायक को सांस्कृतिक उपयुक्त वातावरण के ज्ञान की जरूरत था न सुनने वाले संगीत में कोई दिलचस्पी ले रहे थे। कुछ करना हुआ था इसलिए कुछ हो रहा था।

भारतीय संस्कृति में आप नए संगीत को कुछ भी महत्त्व नहीं देते ?

यह मैंने कब कहा, देवि पूर्णिमा ? पर संगीत तो होना चाहिए। वर्णप्रियता के नाम कवनता थी। ताल स्वर, छन्द-सलाप से भी नहीं मिलते थे। साहित्य की उनम कोई योजना नहीं थी। आवग, प्रत्यावग, भावना प्यार करुणा कुछ भी तो नही थे। कहानी नही थी वणन नहा था, गजल नही थी ठुमरी नही थी, गीत नही था। रोना हसना मौन वार्ता किसी की तारीफ म भी तो यह संगीत नहीं आता था। मान और साधना हीन हाथो म पडने से कला की यही दुगति सवत्र होती है। उपनिषदो क सूत्रो की तरह कला के मम को भी सीखना और साधना पडता है और तब कही कला के सौ दय को ग्रहण करन की शक्ति सस्कारो के अनुसार साधक म आती है।'

पूर्णिमा अपने सामने के चित्र को एकटक देखती रही। कुछ क्षण विरम कर कुमार कहने लगा—

देखो पूर्णिमा ! संगीत के सम्बन्ध मे यही इसी कक्ष म मैं तुम्ह एक प्रतिनिधि चित्र दिखाता हू। कुछ कदम उस कोने तक तुम्हें चलना होगा। और इतना कह वह उस निर्देशित स्थान के पास ले गया। अब वे दोनो एक कलाचित्र के सामने थे जिसम आसावरी रागिनी चित्रित थी। विषय चित्र के नीचे ही लिखा हुआ था इसलिए पूर्णिमा को प्रश्न करने की जरूरत नहीं रही। कुमार बोला—

क्या समझा ?

रागिनी चित्रित है।'

'कैसी ?'

सुबह की।

कितना सुबह ?

काफी दिन चढ गया है।

बिलकुल ठीक।

पास म क्या है ?

'हरिणी।

भोलेपन की प्रतीक है। और क्या देखती हो ?"

पेड।

"पर एक ही क्यो ?"

"अकेलेपन और एकान्त का प्रतीक।'

"और ? कुछ दूर पर चित्र से दिखाई देते है। क्या ?"

स्पष्ट नही है।"

'मतलब है साथी को गए काफी देरी हो गई है। प्रतीक्षा है। इसी लिए चित्रिता की नजर दूर पदचिह्नो की दिशा मे है। देवी पूर्णिमा ! अब एक रमणी की कल्पना करो जो अभिसारिका हो अथवा जो उपरोक्त कथित आवेश म हो। रागिनी के आरोह-अवरोह एव वादी सवादी स्वरो के अला पने ही इन भावनाओ की प्रतीक एक मूर्ति खडी हो जायगी। स्वय गायिका यदि उन भावनाओ की प्रतिमूर्त्ति बन सके तो रागिनी स्वय मूर्तिवान् हो जायगा। वह सगीत का एक प्रारम्भिक आनन्द स्पश होगा। फिर आगे कल्पना है, विभिन्न भावनाए हैं विभिन्न रस है। आत्मनिष्ठ दृष्टिकोण से उठकर व्यक्ति जब वस्तुनिष्ठ अथवा व्यक्ति निरपेक्ष रूप मे अपनेको गति देगा तब सारा ससार—पशु, पक्षी पौधे धरती, आकाश सब उसके अपने हो जायेंगे। एकान्त में वे सब साथी की तरह उसके हृदय के विरह को प्यार को, वाता को पुकार को सबको सुनेंगे और समझेंगे। यही इस चित्र की कला है। भारतीय सस्कृति म ओतप्रोत एकात्मवाद को यदि कोई नहीं समझे तो वह उसके साहित्य, सगीत, चित्र, मूर्त्ति जीवन किसी को कुछ नही समझ सकता।

पूर्णिमा एक मुग्धा की तरह अब इस चित्र को देखने लगी। मगर कुछ ही क्षणो म उसने सुना—

"देवि पूर्णिमा ! गुरुवर विश्वबन्धु तशरीफ ले आए है।'

पूर्णिमा का ध्यान नवागन्तुको की ओर आकृष्ट हो गया। उसने देखा कि एक दिव्य मूर्त्ति कुछ व्यक्तियो के साथ इस कक्ष मे प्रविष्ट कर गई है। एक युवक उसके साथ साथ बराबर म बातें करता हुआ चल रहा है। वे सीधे एक निर्दिष्ट आसन पर जाकर बैठ गये।

प्रबन्धक ने उनकी आवभगत की। कुमार ने नमस्कार किया। पूर्णिमा ने भी पास जाकर प्रणाम किया। उसका ध्यान नवागन्तुक युवक की ओर गया। उसने उसे देखा, परन्तु तुरन्त दृष्टि समेट ली। पुन उसकी दृष्टि

पर गई। दृष्टि मयूर पाद उसके पड़ते ही पूर्णिमा ने सुना—

'कहिये, क्षीणा! आना?'

जी! कुछ नहीं।

आपने मेरी ओर देखा?

जी।

एक बार नहीं। दो बार कृपा की।'

चले हो।

यह गलत है। आँखें तो एक बार,देखना आकस्मिक हो सकता है।

क्या मतलब? प्रश्न विस्वबन्धु का था।

'दुबारा दृष्टि प्रयोजनशील होती है। क्यों देशजी?' सब हँसने लगे। पूर्णिमा ने भी मुस्करा दिया। उसने सुना कहिये! वह बैठ गई। युवक बोला—

हाँ तो मैं कह रहा था कि कला के नाम पर आज जो भारत में व्यापार चलता है उसमें कला और वास्तविक कलाकारों को कोई फायदा नहीं। आज व्यक्ति साधना से नहीं विज्ञापन से कलाकार बनने की चेष्टा करता है। अनेक ख्यातिप्राप्त लेखक हैं जो स्वयं लिखना नहीं जानते। पर्दे के ऊपर जिन्हें आप गाते हुए देखते हैं वे स्वयं नहीं गाते, जो ग़ज़ल या गीत आप जिसके नाम से सुनते हैं वे उसके लिखे हुए ही नहीं होते। यही बात चित्र में है। यही बात संगीत में है। और क्या कहूँ ऐसी ही बात आजकल नारी के यौवन और सौन्दर्य में भी पहुँच गई है।

'बस?

मिस्टर कुमार! आप इस तथ्य को नहीं समझते। परन्तु अभी कुछ दिन हुए आज जैसे ही एक समारोह में मेरे एक मित्र ने कहा कि उनके एक मित्र कई मास से एक लड़की के प्रेम में पागल हुए फिर रहे थे। आगे यदि आप इजाज़त दें तो अर्ज करूँ?

'अवश्य अवश्य!

एक दिन रात को वे प्रेम के आवेश में उसके घर चले गये। कमरे का दरवाज़ा खटखटाया। आवाज़ आई—कौन? उत्तर मिलने पर स्वर पहचानकर बोली। जरा ठहरिये, मैं अभी पेश होने लायक नहीं हूँ। भला

मानुष अपनी उत्सुकता मे एक छिद्र म म प्रेयसी के कमरे म ञ्खन लगा। दखा, उसका सर गजा था। उसन बालाकी एक विग अपन सिर पर रख ली। मुह म दात नही थे पास पडे दात मुह म लगा लिए। आख मसली और फिर देखा कि अब वह नक्ली ब्रेस्टस यानि उराज अपनी चोली म लगा रहा है। उसे पसीना आ गया। मुह से 'तोबा' निकल पडा। उसके पत्नि होन लायक बनने म अभी देरी थी। बिना प्रतीक्षा किए हा विचारा तुरन्त घर लौट आया।

फिर ?'

'फिर क्या। व्यापारिक प्रवृत्ति किन म कहा तक पहुच गइ है इसका यह एक ज्वलन्त उदाहरण है। इसी तरह यदि सभ्य समाज मुझे इजाजत द तो मैं एक किस्सा नतिकता पर सुना सकता हू।'

जरूर।

'आप और हम सब जानते हैं कि हमारे आज जसे समारोहो के अवसर पर भोजन क बाद ऐसे ही किस्से-कहानियो स हमारा सभ्य समाज मिन बहलाता है। स्वस्थ परम्पराओ का कितना अभाव है समाज म व्यक्ति की जीवनी कितना अतृप्त है यह तथ्य इन किस्सो से बखूबी मालूम हो सकता है। हा ता मैंन एक सभ्य पुरुष का कहत सुना कि एक गाव म शहर नही एक परिवार रहता था। मा बाप बहिन भाई। लडका जब बडा हुआ तो उसने अपन पिता से कहा कि उसकी शादी उसी गाव की एक लडकी म कर दी जाय। पिता न कहा कि वह अमुक लडकी उसकी सौतेली बहिन है। शादी नही हो सकती। दुबारा उसने दूसरी लडकी क लिए कहा और उसक सम्बन्ध म उसने वही बात सुनी। तीन बार चार बार अलग अलग पसन्द की लडकियो को कहने पर भी पिता ने वही बात दोहराई। लडका परेशान हो गया। एक दिन उसने अपनी मा को अपनी पसन्द और उसके सम्बन्ध म अपन पिता म हुई बातचीत को दोहराया। मा बोली— बेटा ! न चाहे जिससे शादी कर यह तेरा बाप ही नही है। सुनकर पुरुष हसन लगा। मगर उन्होन सुना—

हसने की बात नही है। संस्कृति और परम्परा क लिए आगू बहान की बात है। यारा के समारोह का समय हम मालूम था। चलन का समय

हुआ तो विश्वबंधुजी ने ही फरमाया कि ठहरकर चलेंगे। मेरे इसरार करने पर बोले—वहा का खाना गाना पहले समाप्त हो जाने दो। मैंने पूछा—देर से चलने से फायदा ? तो बोले—कोई नुकसान नही है। क्या देवीजी ! मैं गलत तो नहीं हू ?'

'जी नही।'

आप कुछ फरमाइए।'

'मुझमे बोलने का ज्ञान ही कहा है ?'

"फिर भी !'

जीवन का उद्देश्य जानना चाहती हू ?

"सुख और उत्पत्ति।

किसी से य न बन ?

यह और बात है।

फिर क्या करें ?'

प्रयास।

कब तक ?

'जब तक जीवन हो।'

यह तो क्षणभगुर है।

जीवन नही। मेरी आपकी व्यक्ति की जीवनी क्षणभगुर है। जीवन अमर है।

कैसे ?

आज से हजारो—बल्कि लाखो वर्ष पहले जीवन था शायद मनुष्य भी था। आज भी है। आयन्दा भी रहेगा। सिर्फ हम और आप ही नही थे। आयन्दा भी नहीं रहेंगे। हमारे न रहने से जीवन के अस्तित्व में कोई फर्क नही आता। यही उत्पत्तिजन्य जीवन मरता है।

'पुनर्जन्म ?

होता होगा। परन्तु उत्पत्ति ही पुनर्जन्म की शृंखला है। इसमे भिन्न पुनर्जन्म की कहानी मेरी समझ में नही आती। पेड से बीज जमीन पर गिरता है। पानी मिलने से फूटता है पौधा बनता है पेड बन जाता है उसी अश मे। परन्तु वह बीज नही रहता। उसी तरह मे यह शरीर नष्ट होने के

बाद पुन यह शरीर नहीं रहता। यह प्राकृतिक नियम है। यही वेदा द्वारा निर्देशित ऋत सत्य है। बाकी कल्पना है।

कोरी कल्पना ? '

कोरी नही। स्वार्थपूर्ण कल्पना। समाज के स्वार्थ के लिए शायद, उसके कल्याण के लिए भी। परन्तु इसके सत्य होने मे मुझे सन्देह है।" सुन कर पूर्णिमा चुप हो गई। मगर, उपस्थित वृन्द ने हृदयेश को बोलते हुए सुना—

'कुमार ! यहा समाज गुरुदेव विश्वबन्धु को सुनने के लिए बैठा है। सम्बद्धतिहीन सस्कारो के उद्भव के लिए तुम बहुत समय ले चुके। हम मजबूर होकर ऐसा कहना पड रहा है।"

'हृदयेशजी ! मैंने सस्कार पढे नही है, न खरीदे हैं। न सुनकर उन्हे अपनाया या छोडा है। मैं वर्तमान मे पला हू। अपनी पीढी मे परिचित और सजग हू। अपने अनुभव और समझ के आधार पर कुछ गलत भी कहू तो उस पर मुझे गौरव है। मैं दूसरो से उधार ली हुई बुद्धि का पक्षपाती नहीं हू।

जानते हो अपना कितना बडा नुकसान कर रहे हो ? '

'कुमार जीवन मे नुकसान को नुकसान समझता ही नहीं। वह जानता है कि व्यक्ति के जीवन मे उसके स्वय के जीवन के नुकसान से ज्यादा और कोई नुकसान नहीं होता। और वह नुकसान निश्चित है। इस नुकसान के मुकाबले मे अन्य सारे नुकसान नगण्य है। चाहे वे स्वास्थ्य के हो, सपत्ति के हो या मन के हो।'

'सुना हृदयेशजी ? '

'हृदयेशजी आपको सुनना चाहते हैं।

'चर्चा अच्छी चल रही थी। खैर !'

"आप सब खा-पी चुके ?'

'जी।

"आप कुछ फरमाइये हृदयेशजी।"

'हम सब तो आपके प्रवचन के इच्छुक हैं।

मुझे इस कुमार मे एक नई ज्योति मिली है। समाजशास्त्री, सगीतज्ञ,

साहित्यिक कलाकार, चित्रकार और भी न जाने क्या क्या। वह क्या नहीं है सिर्फ यही मालूम नहीं है।'

'गुरुदेव, अभी थोड़ी देर पहले देवी पूर्णिमा ने इस कक्ष में लगे कला चित्रों के मर्म को जानने की इच्छा प्रकट की थी।

'फिर ?

मैंने तो यही कहा कि गुरुदेव तशरीफ लाने वाले हैं। वे तुम्हारी उत्सुकता की पूर्ति कर देंगे।

तुमने इनकी सहायता क्या नहीं की?

जिज्ञासु साधारण नहीं है गुरुदेव। आप ही कृपा कीजिए। बातचीत के सिलसिले में एक परिवर्तन आ गया जो सबके लिए रुचिकर था। उपस्थित वृन्द में जो कलाचित्रों में दिलचस्पी रखने थे उठकर एक चित्र के सामने चले गए। इनमें विश्वबन्धु दोनों कुमार पूर्णिमा और किशोरीलाल आदि थे। महाकवि कालीदास के शकुन्तला नाटक के कुछ मर्मस्पर्शी दृश्यों की झलक यहां चित्रित थी। एक अन्य चित्र मेघदूत से सम्बन्ध रखता था। विश्वबन्धु ने कालीदास सम्बन्धी चित्रावलि के बारी बारी चित्रों की ओर अपनी दृष्टि दौड़ाई। फिर एक निश्चयात्मक स्वर से उन्होंने कहा—

'देवि पूर्णिमा! तुम्हारी क्या शंका है?

"मैं चित्रों के सम्बन्ध में विज्ञापित होना चाहती हूं।

तुमने शकुन्तला पढ़ी है?

जी।

फिर समझना मुश्किल नहीं है। यह दृश्य वह है जब वह अपनी सखी के साथ कण्व ऋषि के आश्रम के उपवन में भ्रमण प्रसंग में आनन्द मना रही है। राह में एक लता पेड़ के सहारे से दूर पड़ा है। वह उसको उठाकर उस पेड़ के सहारे चढ़ा देती है। यही भाव इसमें चित्रित है। क्या?

यही तो पूछती हूं।

यहां लता नारी का प्रतीक है। पेड़ पुरुष का परिचायक है। शकुन्तला स्वयं उस भावना का प्रतीक है जो एक मिलन की इच्छुक हो और जो एक मिलन में सहायक हो। महाकवि की यह खूबी है कि उनके पात्र मनुष्यों तक ही सीमित नहीं हैं। समस्त प्रकृति उसका पात्र वस्तु में

गामिन है। पुरुष, स्त्री, पशु, पक्षी वनस्पति, मेघ पहाड, नदियां आदि आदि सब परस्पर एक दूसरे के पूरक और परस्पर सवेदनशील हैं। विश्व एक्य की भावना को यदि जिज्ञासु अपने हृदय म जगह दे सके तो इन कला चित्रो को समझने म फिर बाधा नहीं आ सकती। हमारी वस्तुकला, सगीत कला, चित्रकला, साहित्य धम, सस्कृति—सार इस एक विश्व प्रेम की भावना म ओतप्रोत ह। प्रच्छन्न का प्रकटीकरण अव्यक्त का व्यक्त, असीमित को सामित, अमूर्त को मूर्त इसी एक सिद्धान्त और प्रतीक के आधार पर हम करत हैं। मेरे कथन को समझने, स्वीकारने और हृदयगम करने के बाद कालीदास चित्रावलि को समझने म बहुत आसानी हो जाती है। देवी पूर्णिमा ! अब इन चित्रों को देखो। शकुन्तला की अपने ससुराल विदाई के अवसर पर ऋषि कण्व के आग्रह पर वनस्थली के पडो द्वारा वस्त्रादि के विविध उपहारों की बातें अब तुम्हें असगत नहीं मालूम देगी। इसी तरह यक्ष द्वारा मेघ को अपना सन्देशवाहक बनाने म कोई अनुचित नहीं है। हमारे प्राचीन साहित्य की सारी सृष्टि इस विश्व एकात्मभाव म सजी हुई है। सारा विश्व हमारे लिए सवेदनशील हो यह हमारी सम्पन्न सस्कृति का आदर्श है।'

सुन्दर पूर्णिमा के चेहरे पर प्रसन्नता और तृप्ति की स्पष्ट रेखाए आच्छादित हो गई। उसकी दृष्टि इन कलाचित्रो से हटी नहीं और जितना ही उसने उन्हें देखा उसके आनन्द की सीमा उतनी ही अधिक होती गई। क्षणएक के विराम के बाद ही उसने सुना— 'हमारा धम हमारी सस्कृति, हमारी ललितकलाए वास्तव म एक दूसरे की पूरक तथा प्रतीकात्मक है और यह सब हमारा जीवन है।

जीवन ?

निश्चय ही। और इसीलिए य सब सनातन ह।

यदि अपने वक्तव्य का स्पष्टीकरण करने की कृपा करें तो ।

भारत म धम अन्य धर्मों की तरह एक पुस्तक म कभी सीमित नहीं किया गया। जिसमें जैसा हमारा जीवन चले वही यही धम है। भारतीय के लिए यह एक धार्मिक परम्परा है कि ब्राह्म मुहूर्त म उषाकाल म उठ नित्य कम से निवृत्त हो, सूर्योदय से पहले स्नान आदि करे। पूजा कीर्तन,

पाठ प्रार्थना संध्यादि अपनी निष्ठा के अनुसार करे। फिर खा पीकर अपने व्यावहारिक जीवन में आश्रम मर्यादा के अनुसार लग जाय। संध्या के बाद और शयन के पहले अपने इष्ट में पूर्ण आस्था रखते हुए संसार का भला चाहते हुए आराम से सो जाय। अब यदि इस दैनिक कार्यक्रम का विश्लेषीकरण कोई करे तो उसे मालूम होगा कि मुख्यतः वे शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य के नियम हैं। समाज को एक पुष्ट शरीर व पुष्ट मस्तिष्क देने की यह एक सामाजिक योजना मात्र है जिसे कार्यरूप में मानते हुए समाजहीन व्यक्तित्व से हेय नहीं होता। भारतीय बनने के लिए यह जरूरी नहीं कि वह एक ईश्वर को ही माने, साकार को माने, निराकार को माने, दोनों को न माने। किसी प्रकार की मान्यता अमान्यता भारतीय के लिए धर्म-दृष्टि से बाधक नहीं है। यहां सृष्टि के आदि साहित्य वेदों ने प्रश्न किया यह संसार क्या है, क्या है, कैसा है? कल्पना की, सोचा, मनन किया और बोले— यह विश्व प्रकृति के एक सनातन नियम में बंधा हुआ है और प्राकृतिक नियम ही एकमात्र सत्य है। शनैः शनैः यह सत्य एक शक्ति बन गया। यही शक्ति समयान्तर में ब्रह्मा, विष्णु, महेश और फिर इन्द्रादि देव देवियों की विभिन्न शक्तियों में प्रतीकों में परिवर्तित हो गई। जिन मनीषियों ने इन प्रतीकों को सजाया अथवा सहारा वे हमारे ऋषि महर्षि अथवा आचार्य बन गए। हमारी ललितकलाएं साहित्य संगीत वास्तु निर्माण चित्र— सभी इन प्रतीकों के परिचायक बन गए। परन्तु हमारे धर्म संस्कृति अथवा जीवन का प्रसार कहीं रुका नहीं। प्रगति विकास उद्भव में हम जीवन के स्थायी मूल्यों से उदासीन नहीं हुए। हम उठे गिरे फिर उठे और यह यही हमारी संस्कृति का इतिहास है। आज हम पूजा पाठ संध्या नहीं करते परन्तु स्वयं जीवन हमारा संध्या पूजा हो गई है। हम प्राचीन नीतियों पर नहीं जाते। परन्तु अपना स्वास्थ्य के लिए हमने आसन आदि पुरातन योग ... को ... तादात्म्य में परिवर्तित कर लिया है। शशि पूर्णिमा के विषय में इतना निश्चित है कि अभी अन्धकार में बहुत कुछ किया जा सकता है। और यही सब ... में सब हमारे कुमार में जान सकता हूं।

पूर्णिमा ने कुमार की ओर देखा। वह बोला—

"शशि पूर्णिमा! तुम अभिमन्यु का मन महात्मा है कि वह अपनी

उपस्थिति म हम जसे क्षुद्र बुद्धि को बोलने सुनने का अवसर देते हैं । वास्तविक तथ्य तो यह है कि वे थोडे मे बहुत कुछ कह गये। हमारे जीवन के अनेक अगो का उन्होने अपने संक्षिप्त वक्तव्य मे स्पष्ट कर दिया है । मानव की आन्तरिक भावनाओ को उसके प्राकृतिक आवेशो को, उत्पादित रूप म पेश करने का नाम ही कला है चाहे वह साहित्य से हो, सगीत के जरिये से हो अथवा चित्र और मूर्तिकला में हो । उत्पादित रूप मे ही भावावेगो का सवदन अथवा प्रतिवेदन कलाकार की सामाजिकता है । जिस भावावेश को हम अपने गृहस्थ मे अजीजो और बुजुर्गों के सामने, छोटे बडो की उपस्थिति म स्वतन्त्रता से बिना हिचक के नही रख सकते उसे समाज के समक्ष भी रखने म हम पर रोक होनी चाहिए। हमारी कला अथवा कोई कला अथवा उसका रूप तभी शक्तिशाली और प्राणवान है, यदि वह एक अभीष्ट उत्पादित आवरण कलाकार को, उस भावावेश को समाज के समक्ष पेश करने का अवसर दे सके। हमारी राग रागिनिया ने सात स्वरो की विशिष्ट प्रणाली मे इस भावना को व्यक्त किया है । साहित्य ने शब्दो मे इसकी अभिव्यक्ति की है। चित्रकला में रखाओं और रगो म इसको व्यक्त किया गया है। अतीत और आगत परिस्थितियो के साथ यदि अनागत के लिए भी इसमे प्रेरणा है तो यह एक प्रगतिशील कला का उदाहरण सिद्ध होगा।'

पूर्णिमा मन्त्रमुग्ध सी कुमार की बातो को सुनती रही। कुमार ने क्षणक के लिए अपनी विशेष थोभी पूर्णिमा की आखो मे देखा। कुछ विरमकर वह पुन बोल उठा—

'देवि पूर्णिमा ! शान्त सागर के आवेगो का अन्दाजा हम उसमे उठने वाली लहरो से लगाते हैं। शान्त हृदय मे उठने वाले आवेशो की अभिव्यक्ति ये हमारे कलारूप हैं। इन रूपो से हम परस्पर एक दूसरे को पहचानते हैं एक-दूसरे को पुकारते हैं प्यार करते हैं मान सम्मान देते हैं। एक युग की वेदना को परम्परा को अन्य युगो की पीढियो के लिए सुरक्षित रखते हैं। जो युग युग की पुकार है युग युग के लिए सवेदनशील है साथ ही सामाजिक व प्रगतिशील है वही वास्तविक और सनातन कला का मूर्त रूप है।

अपने वक्तव्य को पूर्णिमा ने कहा तक हृदयगम किया है इसे देखने

पे लिए कुमार कुछएक क्षण पुन चुप हो गया। परन्तु, जब उस ने बात का यकीन हो गया कि पूर्णिमा को कही हुई बात अरुचिकर नहीं है उसने पुन कहना शुरू किया—

देवी पूर्णिमा ! सूक्ष्म स मा की ओर हमारी कलाए प्रगति करती हैं। इ सान के हृदय म उठने वाले भाव अथवा आवेग अति सूक्ष्म होते हैं। व्यक्ति उन उठने वाले आवेगों के अनुकूल बोलता है पुकारता है चीखता है स्मित होता है हसता है आदि आदि। इन आवेगो को अपनी कला म, अपनी सगीतकला म सात स्वरो की एक विशेष वदिश स एक रागिनी म हम यथा आवेग एक उत्सर्जित रूप देते हैं। इस उत्सर्जित रूप को और अधिक मूर्त बनाने के लिए हम साहित्य का शब्द रचना का, भाषा का सहारा लेते है। उन्ही आवेगो को और अधिक मूर्त बनाने के लिए हमारी चित्रकला व मूर्तिकला है। और इन समस्त उत्सर्जित आवेगो की सम्पूर्ण कलामय सगम हमारी नृत्यकला है।

कुमार ने पुन पूर्णिमा पर अपनी बात का प्रभाव देखने की दृष्टि से कुछ क्षण के लिए चुप्पी साध ली। उसने सुना—

आप फरमाइये। वह बोला—

सिवाय भारत के ससार म आज तक ससारचक्र को सृष्टि के प्राकृतिक नियम को, सम्पूर्ण विश्व की सचलित और सजटिल क्रिया गति एव गली को किसी कलाकार न अपनी कला मे मूर्त नही किया है। उस सामने की मूर्ति को देखो पूर्णिमा। हमार दक्षिण भारत की यह विश्व को एक देन है। नटराज शकर की यह कलामूर्ति कहा तक उस सूक्ष्मतम नियम की परिचायक है यह तो एक दार्शनिक ही कह सकता है फिर भी इतना आभास सरलता से एक साधारण विवेकशील व्यक्ति को भी मिल जाता है कि कलाकार न सृष्टि सचालन की अभिव्यक्ति एक साकार रूप म किस प्रकार की है। विश्व एक गोलाकारघेरे म वष्टित है। उसके चारो ओर सजीव अग्नि शिखाए—ज्वालाए मौजूद है जो विविधप्रकार की बातजनिनी हैं। घेरे म बीचोबीच आदिदेव शकर एक सवत्र गतिशील नृत्य मुद्रा म प्रदर्शित हैं। य अग्नि शिखाए देश-काल की असीमितता को एक असीम का व्यक्त करती हैं। स्वय शकर अपन अग की हर मुद्रा म गतिशील हैं। उनका

शिर का ताज, डमरू, उनके अलंकाररूपी सर्प, उनके वस्त्र सब एक सजीव गति के सूचक हैं। उनके हाथों की मुद्राएँ कल्याण-सूचक, नियम-वाचक और जीवन और मृत्यु की द्योतक हैं। मूर्तिकार का अभिप्राय है कि सारा विश्व एक प्राकृतिक नियम में बँधा हुआ है जो कल्याणकारी है। जीवन और मृत्यु विश्व में एक अमर कहानी हैं। उत्पत्ति और नाश शिव में और प्रकृति की घटनाओं की सजीवता है। न जीवन है न मरण है, ये दोनों घटनाएँ हैं। विश्व में घटनाओं के सिवाय और कुछ नहीं होता और ये घटनाएँ कारण-कार्य के रूप में विश्व गति का एक प्रवाह मात्र हैं। यह प्रवाह अमर है। इसको रोका नहीं जा सकता। इसके विरुद्ध चला नहीं जा सकता। प्रकृति के नियमों के अनुकूल चलने में सार्थकता है। यही जीवन है, यही ज्ञान है, व्यक्तित्व है, सामाजिकता है। इन नियमों की प्रतिकूलता अज्ञान है, बाधा है, दुःख है, शून्यता है, विषमता है। मूर्ति की ओर देखो, रवि पूर्णिमा! इस विश्व की प्रतीक यह शिव मूर्ति एक ठोस जमीन पर खड़ी है। संसार की सारी विभिन्नता को जो घेरे की शून्यता में प्रदर्शित है, जो साथ ही गत, आगत और अनागत समय का सूचक है, इस एक प्राकृतिक सिद्धांत से साक्षात्कार, निर्वचन और व्याख्या की जा सकती है। व्यक्ति, समाज, जाति, धर्म, राष्ट्र, विश्व—सारे इस प्राकृतिक नियम के अधीन हैं। इनके उल्लंघन में इनकी प्रतिकूलता में बाधा है, विषमता है, अस्थायीपन है। यदि तुमने श्रीमद् भगवद्गीता को पढ़ा या सुना है तो तुम्हें श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को अपने विराट् रूप के दर्शन कराने की बात अवश्य याद होनी चाहिए। उसी विराट् रूप की मूर्तिकला में यह प्रतिनिधि मूर्ति है। और क्या कहूँ? यदि तुम कुछ प्रश्न करो तो मैं इस मूर्ति का और भी स्पष्टीकरण तुमसे कर सकता हूँ।

'संसार में तो विभिन्न स्वर ध्वनियाँ हैं।'

अवश्य। व्याकरणाचार्य पाणिनि ने समस्त स्वरों का—बल्कि स्वर व्यंजनों की उत्पत्ति शिव के डमरू-नाद से ही माना है। 'अ इ उ ण' से 'हल' तक सूत्रों की व्याख्या यदि कोई विद्वान् शास्त्री व्याकरण से पढ़े तो उसे यह प्रश्न करने की आवश्यकता ही नहीं होगी। कला को पूर्णरूप से समझने के लिए समुचित पृष्ठभूमि भी तो चाहिए, रवि पूर्णिमा!"

'विभिन्न रग ?

'आग की ज्वालाओ म कौन भाव रह जाता है भिर पूर्णिमा ?

'मैं गमन गई। परन्तु गमार की विभिन्न मूर्तें रूप ?

'मूर्ति स्वय मूरत और रूप का प्रतीक नही है भिर पूर्णिमा ?

यह ता पुण्य का प्रतीक है।

'और जगाओ द्वारा र्शा न गया ?

मैं गमभी।

और गुना। स्वय शिव अलकारा स मुसज्जित है। य अलकार विभिन्न सौन्दर्य क प्रतीक हैं। उनका वस्त्र ससार म सामाजिकता का आव रण है। मस्तिष्क पर अध चालन्द्र धनी कल्पना निरन्तर बहती गति, सौन्दर्य विहार और भाग न परिचायक हैं।

गुनकर पूर्णिमा प्रहसित हो उठी। क्षणएक क विराम के बाद उसान पुन सुना—

ध्यान स देखो पूर्णिमा! स्वय आदिदेव शकर एक नत्य की मुद्रा म हैं जा एक विशेष भाव की द्योतक है। इसमें स्वर है लय है ताल है मुद्रा है व्यक्तित्व है। यदि ज्वाला क रगो को भावो का प्रतीक माना तो तुम्हे हरे म आशा नील म गहराई लाल म भय, पील म शान काल म अपमान की प्रतिनिधि भावनाए प्रविष्ट मिलेंगी। कला को जानन और हृदयगम करन के लिए यह आवश्यक है कि जिज्ञासु तत्सम्बन्धी प्रतीकों का पहले समझे उनका ज्ञान प्राप्त करे। यह सब कलाओ मे ललितकलाओ म विशेषकर भारतीय ललितकलाओ म प्रवेश पाने क लिए आवश्यक है।

कुमार का वक्तव्य शायद अभी समाप्त हुआ था। परन्तु ठीक अपने वाक्य की समाप्ति पर उसने सुना कि किसी ने तानपूरे पर सा प स्वरो को छेडना शुरू कर दिया है। कुमार बहुत कुछ और कहना चाहता था। पूर्णिमा भी और सुनना चाहती थी मगर स्वरो के आलाप को सुनकर वे चुपचाप एक पास के ही आसन पर बठ गये। सूर और मीरा के दो भजन गायक न गाये। सुनकर उपस्थित समाज के हृदयो मे आनन्द की लहर सी दौड गइ। साधुवाद के शब्द चारो ओर सुनाई देने लगे तालिया बजी। कुमार के मुह स इस बार शब्द निकले—

'स्वप्न ! सुना तुमने ?"

पूर्णिमा सुनकर एकाएक चौंक पड़ी। उसने कुमार की आंखों में देखा। वह बोली—

क्या नाम पुकारा तुमने ?"

'देवि पूर्णिमा !"

नहीं, नहीं। तुमने अभी क्या नाम लिया। यह नाम तुम्हें किसने बताया ?

मुझसे गलती हो गई।"

नहीं, कुमार। तुमने मुझे पहचाना कैसे ?"

"देवि पूर्णिमा, यह समाज है।'

'यह मैं जानती हू। तुम सत्य के अलावा और कोई नहीं हो सकते। बोलो, कुमार। तुम सत्य हो न ? कहां रहे तुम अब तक, बोलो ? मैं जानती हू, मेरे इस नाम को दुनिया में और कोई नहीं जानता।'

"देवि पूर्णिमा !'

इस बाहर चलें, सत्य। मैं आवेश में हू। यदि दुनिया का खयाल है, समाज का संकोच है तो अविलम्ब तुम मेरे पीछे-पीछे आ जाओ। और किसी तरह मैं सामाजिकता नहीं रख सकती।" वह उठ खड़ी हुई। कुमार बैठा रहा। मगर उसने सुना—

सुना नहीं, कुमार ?"

वह कमरे के बाहर चली गई। कुमार उसके पीछे पीछे चला गया।

बाहर बड़ा सुहावना मौसम था। कमरे में मधुर संगीत चल रहा था। चन्द्रमा की रोशनी में महकते हुए फूलों की झाड़ियों के बीच से एक सुंदर हौज के सहारे चले गये। पूर्णिमा बोली—

'आज करीब दस वर्ष से भी अधिक हो गए। सत्य ! तुम कहां चले गए थे ? पिताजी की मृत्यु के बाद सौतेली मां ने मुझे घर से निकलने पर मजबूर कर दिया। मुझे आश्रय की जरूरत थी। परन्तु, यह सब बहुत लंबी कहानी है। तुम नहीं सुन सकोगे। मैं कह भी नहीं सकूंगी।'

उसकी आंखों में आंसू आ गए। उसने अपनी बांहें सत्य के गले में डाल दीं। उसकी गरम श्वासों को उसने अपने वक्ष पर

पूर्णिमा की आखो से निकले हुए आसू गरम थे यह उसे उनके अपने बाजुओं पर पड़ने से मालूम हो गया। उसने अपने हाथों से पूर्णिमा की आखें पोछ दी। कुछ क्षण वे इसी स्थिति में बैठे रहे। कुछ क्षणो के बाद पूर्णिमा पुन स्वस्थ चित्त हो गई। वह बोली—

'मैंने बहुत प्रतीक्षा की। घर से निकलने के बाद तुम्हारी बहुत तलाश की।

'अब सब ठीक हो जायगा स्वर्ण!

'तुमने बहुत देरी कर दी सत्य!' पूर्णिमा ने पुन कुमार को पकड़ लिया। वह बोला—

अब कही नही जाऊगा स्वर्ण!

तुम नही जानते सत्य, अब तक क्या क्या हो गया है?

कुछ भी हुआ हो तुम मेरी हो स्वर्ण।

'नही सत्य तुम नही समझते। मैं कह नही सकती। तुम सुन भी नहीं सकोगे।

बीती हुई बात को जाने दो आज भी हम एक दूसरे को प्यार करते हैं, इससे यह सिद्ध है कि गत कुछ भी खराब नही था। कम से कम उसने हमारी आत्माओं को नही गिराया। परस्पर हमारी भावनाए आज भी वैसी ही है इसलिए जो कुछ गुजरा वह सब तुच्छ था नगण्य था। कुछ क्षण के लिए पुन वे एक दूसरे की बाहों में उलझ-से गये। कुमार बोला—

स्वर्ण हम यहा एकान्त में आये बहुत देरी हो गई है।

'समाज का भय रखकर सर साथ रह सकोगे?

मुझे अपने लिए कोई भय नहीं है।

'समाज के भय को तो मैं कभी का त्याग चुकी।

'क्या मतलब?

"दुनिया बहुत खराब है सत्य। विशेषकर नारी के लिए। आश्रय के बिना यौवन और सौन्दर्य उसके लिए अभिशाप हैं। मैंने नारीत्व को खोकर इस अभिशप्त जीवन को बचाया है। नारी के ये अभिशाप आज भी शेष है। अब ये पूजा के फूल नहीं रहे। उपहार की वस्तुएं भी नहीं रहीं। बाजार गौने को तुम्हारे अर्पण कर सकू, सत्य? इस असामाजिक पापमयी जीवनी

का समर्पण अब कैसे होगा ?"

पूर्णिमा ने अपने आवेश में पुनः एक बार सत्य को अपनी बाहों में बांध लिया। इस बार वह सत्य के चेहरे में, उसकी आंखों में एक दयनीय मूर्त्ति बनी देख रही थी। सत्य ने देखा कि उसकी आंखों में सजलता है प्यास है एक अभाव की। उसने चांद की ओर देखा। वह चमक रहा था। उसने महसूस किया कि पूर्णिमा का मुंह उसके और अधिक समीप आ गया है। उसने पूर्णिमा को अपनी सबल बाहों में कस लिया। दोनों की श्वासें तीव्रतर हो चलीं। उसने अपने होंठ पूर्णिमा के अधरों पर लगा दिये। एक विलम्बित चुम्बन के बाद जब उसने पूर्णिमा पर अपनी पकड़ शिथिल की, उसने महसूस किया कि उसके होंठ गरम थे। उनकी ऊष्मा अब तक वह अपने होंठों पर महसूस कर रहा था। उसे मालूम हुआ कि पूर्णिमा का सारा शरीर एक तप्त हुए लोह की तरह जल रहा है। उसने पुकारा—

'स्वर्ण !' मगर स्वर्ण चुप थी। कुमार के मुंह से पुनः शब्द निकले—पूर्णिमा !'

"एक बार और, सत्य।' कुमार ने महसूस किया कि उसका स्वर्ण—पूर्णिमा—शिथिल सी उसकी बाहों में आंखें बन्द किये हुए पड़ी है। उसने पुनः एक चुम्बन उसके अधरों पर दे दिया। फेकर ज्यों ही उसने अपनी पकड़ शिथिल करनी चाही कि उसने सुना—

बस ?" कुमार ने पुनः चुम्बन की वही क्रिया दोहराई। इस बार उसने शक्ति-सी लगा दी थी। कुछ ही क्षणों में उसने महसूस किया कि पूर्णिमा का शरीर पसीने से तर होकर शीतल हो चला है। उसने महसूस किया कि उसके अधरों में भी हल्की-सी शीतलता व्याप्त हो गई है। उसने पूर्णिमा पर अपनी पकड़ छोड़ दी। उसने सुना—

'मुझे माफ करो, सत्य।' मगर सत्य ने कहा—

'इस एहसान के लिए मैं शुक्रगुजार हूं।

एहसान तो तुमने किया है कि मुझे कबूल फरमाया।

'नहीं, स्वर्ण ! इन्सान की यह अमर प्यास है।

कुछ क्षण के लिए वे एक दूसरे से विलग हो समीप के हौज के किनारे पास-पास बैठ गए।

"तुम्हे पता कैसे चला कि मैं स्वर्ण हू ?'

'अभिनय के प्रथम दिन।

"कैसे ?"

अभिनय का सचालन मैंने ही किया था।'

'पर तुम तो वहा दिखाई नही दिये।

'तुम्हे पहचानने के बाद मैं तुरन्त वहा से चल दिया। उस वीभत्सता को देखने का मुझमे साहस नही था स्वर्ण। तुम्हारी पीठ पर पडे ताडना के दाग ने मुझे मौसी की याद दिलाई। तुम्हारी गर्दन और चेहरे के काले तिलो ने तुम्हे साक्षात रूप मे मेरी आखो के सामने खडा कर दिया।

सत्य ! मैं बहुत गिर गई हू। मुझे उठाओ। मेरा क्या प्रायश्चित्त होगा ? क्या प्रायश्चित्त करू ? मैं कैसे योग्य बन सकती हू ?

'सब ठीक हो जायगा स्वर्ण ! यह समय मगर उसने सुना—

'कब ? कैसे ? उसकी आखो मे दयनीय याचना थी।

इसी क्षण कक्ष की ओर से पूर्णिमा ! देवि पूर्णिमा —पुकारें आइ। प्रतिपल पुकार के साथ स्वर समीप आता हुआ मालूम दिया। स्वर्ण और सत्य—पूर्णिमा और कुमार उठकर कलाकक्ष की ओर चल दिए।

१०

पूर्णिमा को ठाकुर जयसिंह के साथ राजस्थान में आए करीब एक सप्ताह गुजर गया। उनकी पुरानी जागीर के गांव विश्रमपुर के गढ़ में इस समय पूर्णिमा का आवास निवास था। ठाकुर जयसिंह ने अपने वचन और वायदे के अनुसार पूर्णिमा के भविष्य-जीवन की सुरक्षा के लिए उसके खाते में रकम जमा करा दी थी। पूर्णिमा ने जागीर की हैसियत के अनुरूप जेवर, कपड़े तथा अन्य आवश्यक गार्हस्थ्य की वस्तुएं खरीद कर लिए। ठाकुर जयसिंह ने महानगरी बंबई से रवाना होने के पूर्व अपने कामदार को आवास निवास के सम्बन्ध में उचित एवं आवश्यक आदेश दे दिये। गढ़ के पुराने आवासों को नया रूप देने की योजना को तो वे पूर्णिमा की रुचि के अनुकूल ही उसकी देखरेख उपस्थिति और व्यवस्था में ही क्रियान्वित करना चाहते थे। फिर भी इस सम्बन्ध में उनके स्पष्ट आदेश थे कि नगर में रहने वाले व्यक्तियों को वहां आने पर शहरी सुविधाओं की कमी महसूस न हो।

उनके इस विश्रमपुर गांव में करीब तीन चारसौ घरों की बस्ती थी। उनके कामदार ने उनके आने के पूर्व ही नव निर्माण और मरम्मत के लिए आवश्यक सामान और मजदूर कारीगरों के प्रबन्ध कर दिये थे। गढ़ की प्राचीरों की मरम्मत तथा रंगे जाने के बाद उसको एक नया रंग मिल गया था। गढ़ के चारों ओर छोटी छोटी गलियां और उनमें बड़े-छोटे झोपड़े झोपड़ियां बिखरे हुए थे। थोड़ी ही दूर चारों तरफ रेत के धोरे थे। इन्हें यदि रेत के पहाड़ कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

सवारी के लिए इस गढ़ में ऊंट रथ बलिया घोड़े पहले से ही मौजूद थे। परन्तु ठाकुर जयसिंह रेतीले रास्तों की कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए शीघ्र गमनागमन के लिए एक जीप और एक स्टेशन वैगन और खरीद कर ले आए थे। गढ़ में दो कुएं थे। तेल इंजन की सहायता से इनमें से आवश्यकतानुसार पानी निकाला जा सकता था। बिजली की व्यवस्था भी

गढ़ की मुख्य इमारतों में तेल इंजिन द्वारा की हुई थी।

पूर्णिमा ने विक्रमपुर पहुंचते ही यह अनुभव किया कि गांव का यह गढ़ प्राचीन सामन्ती युग की संस्कृति का एक अवशेष है। ऐसे अवशेष राजस्थान भर में यत्र-तत्र सर्वत्र फैले हुए पड़े हैं यह भी उसे बताया गया। ठाकुर जयसिंह के गढ़ में पहुंचते ही गांव में उपस्थित लोग अपना-अपना काम छोड़कर उन्हें यथायोग्य इज्जत देने के लिए गढ़ में इकट्ठे हो गये। जब उन्हें यह सूचना दी गई कि उनके साथ में आई हुई स्त्री उनकी नई ठकुरानी है तो गांव वालों को विस्मय तो हुआ परन्तु पूर्णिमा को योग्य आदर देने में उनकी ओर से कोई गलती नहीं हुई। पूर्णिमा ने भी जो उसके संपर्क में आया उसका उचित आदर सत्कार किया। पूर्णिमा आते समय अपने साथ मिठाई की गोलियां के अनेक डिब्बे पुस्तकें बच्चों और स्त्रियों के लिए छोटे छोटे उपहार आदि कई किस्म की अनेक वस्तुएं ले आई थी। पर्याप्ति और अभाव दोनों का अनुभव होने के कारण उस उन वस्तुओं का भी खयाल आते समय था जो शहरी जीवन में दूर उपलब्ध नहीं हो सकती। ऐसी वस्तुओं में उसके साथ विभिन्न फलों के रस मुरब्बे अचार चटनियां शरबत फल सब आदि सुरक्षित सीलबन्द डिब्बों में मौजूद थे। अपना आवास सजाने के लिए वह अपनी पसन्द की अनेक छोटी बड़ी तस्वीरें और साजसज्जा की चीजें अपने साथ ले आई थी। पिछले एक सप्ताह वह अपने आराम का अपने योग्य निवास के लिए ठीक करने में व्यस्त रही। ठाकुर जयसिंह का उसकी हर इच्छा की पूर्ति में पूर्ण योग रहा।

पूर्णिमा ने विक्रमपुर पहुंचने की प्रथम रात को यह अनुभव किया कि राजस्थान के इन रंगीन मकानों की शानदार शांत रातों में अन्य स्थानों के मुकाबले में कितना अधिक आकर्षण तथा सुख है। प्राचीरों से घिरे गढ़ के मकानों की विस्तृत छत पर जब वह चन्द्रमा की शुभ्र चांदनी में प्रथम बार पहुंची तो उसे अनुभव हुआ कि वह पृथ्वी के धरातल से उठकर एक स्वर्गीय उपवन के धरातल पर पहुंच गई है। इस समय उसके बाल खुले हुए थे। पुष्ट गौर शरीर पर एक मामूली-सी साड़ी तथा पांवों में अलता और कुछ नहीं था। छत के विस्तृत आंगन में दो पलंग श्वेत चादरों से ढंके हुए बिछे पड़े थे। सिरहानों पर रखे तकियों का मखमलियां आवरण हरे थे।

सौभाग्यशाली हूं पूर्णिमा !"

'तशरीफ लाइए।"

'तुम न हिलो पूर्णिमा। दूर सामन्ता के इस गढ़ में आज प्रथम बार यह अलौकिक सुन्दर दृश्य मुझे देखने को मिला है। अपने सारे सौभाग्य को भी मैं इस पर न्योछावर कर दूं तो भी मुझे दुःख न होगा।

चन्द्रिका कितनी सुन्दर और सुहावनी है।' मगर उसने सुना—

तुम यहां रह सकोगी पूर्णिमा ?

क्या नहीं ?'

कभी-कभी मैं अपने सौभाग्य पर सुख पर, शक करने लग जाता हूं।'

मुझे डराओ नहीं।

नहीं, पूर्णिमा ! मैं तो स्वयं डरता हूं कि कहीं यहां की वीरानगी, शून्यता तुम्हारी तबियत यहां से न उखाड़ दे। जब भी तुम उसे अनुभव करने लगो मुझे बता देना। हम यहां से और कहीं चल देंगे। मैंने अपने कर्मचारियों को यह भी आदेश दे दिये हैं कि वे इस कोशिश में रहें जिससे विभिन्न कार्यक्रम गांव में होते रहें।

आप बहुत मेहरबान हैं।

मैं बहुत खुश हूं। और इतना कह वह पूर्णिमा के समीप आ गया। पूर्णिमा भी उसके समीप सरक गई। कुछ क्षण तक दोनों दूर अपने सामने के विस्तार को देखते रहे। जयसिंह ने पूर्णिमा के गले में अपनी बांह डाल रखी थी। दूर क्षितिज पर उठते हुए बादल में बिजली चमकी। हलकी सी गरज भी सुनाई दी। आसपास के पेड़ों पर बैठे मोर बोल उठे। जयसिंह ने पूर्णिमा की आंखों में देखा और उसे चूम लिया। पकड़े-पकड़े ही वह उसे अपने पलंग की ओर ले गया।

सुबह जयसिंह पूर्णिमा से पहले जग गया था। उसकी बांह पर पूर्णिमा का सिर और बिखरे हुए बाल थे। उसने देखा कि पूर्णिमा उसके सहारे उसकी सतृष्णा तरफ मुड़ी हुई है। वह नींद में थी। उसका एक हाथ उसके वक्षस्थल पर था। जयसिंह नहीं चाहता था कि वह कोई हरकत करके उसकी नींद में खलल डाले। उसके अपने स्वप्न अथवा जो भी उसने इसी अभिप्राय में समाता नहीं। उसे कुछ हो गया अपना इस परिस्थिति में और

थ कि गन के मुख्य द्वार पर हमेशा की सामंती प्रथा के मुताबिक गढ के खानदानी कलाकार ने शहनाई पर रागिनी भैरवी के कोमल स्वर छेड दिये। उन्हे सुनते ही पूर्णिमा जग पडी। उसने देखा जयसिंह हस रहा है। वह भी मुस्करा उठी। अपने प्यार म दोनो ने एक-दूसरे को चूम लिया। दोनो पलग परसे उठ बैठे। अपने वस्त्र सभालकर दोनो नीचे चल दिये। और इस तरह रातें बीतती गइ।

पूर्णिमा का दिन अपने आवास को व्यवस्थित करने मे बीत जाता। अपने निवास-स्थान को नया रूप देने म उसे कई बार वस्तुओ को इधर उधर करना पडा। गाव की गरीब औरतें प्राय दिनभर ही उसकी सेवा म रहती। सात दिनो के थोडे से अरसे मे ही उसने अनेको को अपना सुपरिचित बना लिया। धीरे धीरे उसने गाव की आर्थिक और सामाजिक परिस्थिति जान ली। गाव मे गरीबी की क्या आवश्यकताए हैं यह उससे छिपा हुआ नहीं रहा। परस्पर परिचित हो जाने के बाद उसने एक दिन यह निश्चय किया कि गाव म जाकर वह ग्रामीणो की दशा देखे। जयसिंह से अनुमति लेने म उसे देर न लगी। एक दिन गाव की कुछ स्त्रिया जब उसके पास अवकाश के समय आइ उसने उन्हे अपने बच्चो के साथ आने को कहा। उसे आश्चर्य था कि गाव मे बिना आमदनी के लोग कसे रहते हैं। एक दिन दोपहर को खा-पीकर जब वह अपने कमरे म बैठी थी कि एक प्रौढा अपनी बालिका को लेकर उसके पास आ बैठी। पारस्परिक कुशल प्रश्न के बाद पूर्णिमा ने पूछा—

'तुम्हारा यह गाव कितने घरो की बस्ती है ?

' तीनसौ की।

' लोग निर्वाह कसे करते हैं ?"

' खेती से।।

'सबके पास जमीन है ?"

नहीं।

फिर ?

मजदूरी करलते हैं।

यहां मजदूरी क्या है ?'

"क्या नहीं ? '

'मेरा ख्याल था कि तुम यश न ग्रहण करोगी।

'क्या ?

जीवन का इस कदर गाम्यता में परिवर्तित कर लेने का मुझे आशा नहीं थी।

"अब तो विश्वास हो गया ?

'पूर्णिमा। आज जब मैंने सुना कि तुम इस गाव के लिए वरदान होकर आई हो मैंने अपने जीवन मे सबसे बड़े सुख का अनुभूति की। मैं सोच भी नहीं सकता था कि हम असली गाव मे नव जीवन उत्पन्न कर सकते हो। आज सुबह जब मैं गाव मे निकला तो मैंने देखा कि चमार की मां का घर एक सुघरी वाटिका का नजर अग्नियार कर रहा है। उसके घर के पेड़ो के नीचे की चौरी पर बठने के लिए आज सभ्य-से सभ्य व्यक्ति का जी चाहता है। उसकी झोपडी की शक्ल भी अच्छी हो गई है। मुख्य द्वार पर पत्थर के खम्भे लग जाने से सारा अहाता एक नई शक्ल पा गया है। मैं आगे गया तो सारी गली की शक्ल मुझे बदली हुई मालूम दी। साफ-सुथरा चौक लीपी पोती ऊची चौकी सुघरा हुआ प्रवेश-द्वार एक पक्ति मे सीधी बाडें हवादार मजबूत झोपडी यही सब मुझे दिखाई दिया। पूछा तो गाव वाले बोले— भाजी ये मजदूर कारीगरो की सहायता से यह सब कराया गया है। उन्होने मुझे आश्वासन दिया है कि व थोडे ही दिनो मे सारे गाव के घरो को गलिया तथा चौको को उपवनो और वाटिकाओ म परिवर्तित कर देंगे। घर गली और चौक की जमीन का केवल सम कर देने मात्र से इतना सौन्दय आ सकता है यह तो कोई सोच ही नही सकता था।'

आपको पसन्द आया उसके लिए शुक्रिया ?

तुम्हारे काम मे मैं योग कस दे सकता हू ?

यह सब तो आपकी ही ओर से है।

या कहने से मुझे सन्तोष नहीं होगा।

'यह राजस्थान है रेगिस्तान का। पर वह रेगिस्तान नहीं जहा कुछ न हो सकता हो। सुनती हू यहा कभी वीरो की खेती होती थी। मातभूमि की रक्षा मे सपूतो की फसलें की फसलें कट जाती थी। मदान खून से तर

हो जाते थे। सुना है, यहा का कण-कण अणु अणु वीरो ने खून से सिंचा हुआ है। यहा की मिट्टी म त्यागशील वीरागनाओ की भस्मी मिली हुइ है। ठाकुर साहब ! वह समय तो चला गया। आपका यह गढ भी राजस्थान म यत्र तत्र फले हुए गढो की तरह त्याग, तपस्या, वलिदानो का प्रतीक है। इस गढ म भी शौय, सौदय, प्रेम, वलिदानो का इतिहास दोहराया गया होगा। यहा की प्राचीरो पर महलो म तप्ति, अतप्ति, वासना, राग रग की कहानिया वरती और कही गई होगी। क्या अपने पूवजो की इस लीला भूमि को—भारत के इस पुण्य-तीथ को—हम अपने प्रयासो स सजाने मे सफल रहेंगे ? यह एक भावना मुझे अपने प्रयास म प्रेरित कर रही है। मैं चाहती हू यह गढ और यह गाव आदश गढ और आदश गाव बने।'

"पूर्णिमा !"

'ठाकुर साहब ! गढ के महलो की छतो पर जब मैं सोती हू तो अनक बार मुझे एक सुन्दर अलौकिक दश्यावलि-सी दष्टिगोचर होती रहती है। मुझे दिखाई देता है जस महलो के अन्तरवास म अनेक राजा, महाराजा, महारानिया, राजकुमारिया उनकी सहेलिया, दासिया आत-जाते हैं। मह सूस करती हू जसे एक सामन्ती स्वण युग मेरी आखो के सामने गुजर रहा है। लम्बे चौडे पुष्ट शरीर, वडी-वडी मन्दन-वाहिनी आखें, गौर वण, केस रिया कसूमल पगडिया, लम्बे-लम्बे वाग कमर बाधी हुई चूडीदार पाजामे स्वण डोरो से सज्जित रग बिरगी जूतिया मोती माणिक, हीरे, पन्नो के अलकार, ढाल, तलवार, कटार से सुसज्जित ऐसी मूर्तिया उस वातावरण म मेरा आह्वान करती हैं। मैं शामिल हो जाती हू। पर, दूसरे ही क्षण जसे हम सब इन प्राचीरो से गाव की ओर देखत ह। और देखते देखते सारा दश्य बदल जाता है। उसे मैं दोहरा नही सकती ठाकुर साहब। वही दृश्य एक दयनीय मरघट की मूर्तिया म परिवर्तित हो जाता है। फिर ऐसा मालूम होता है जसे हम सब पर नितान्त गरीबी छा गई है। एक रोटी क लिए हम सब परस्पर लडते झगडते हैं। न कोई राजा है, न कोई रानी। सब नगे भूखे, जर-जर वस्त्र उदास मुख, अभिप्रायहीन आखो स एक-दूसरे को ओर निराशा से देखते हैं। एक चीख उठती है। मैं भी चीखती हू और जग जाती हू।'

"बड़ा भयङ्कर दृश्य तुम देखती हो।"

"हां ठाकुर साहब ! जो कहती हूं उससे अधिक भयङ्कर मैं देखती हूं। वह सब कहा भी तो नहीं जाता। वह सब याद भी नहीं रहता है। अभाव भरी कहानी अपने अनेक रूपों में, विविध दयनीय दुर्दशाओं में अपनी आंखों के सामने बार बार दोहराती रहती हूं।

तुम्हें डर नहीं लगता ?'

"लगता है।"

'हम इस स्थान को छोड़ सकते हैं पूर्णिमा।

' यह तो निराकरण नहीं हुआ, ठाकुर साहब।'

' फिर ?

क्या हम अपने काम और भावना से इस इतिहासमयी भूमि को फिर सजा नहीं सकते ? समुचित साधन न सही। औरों के हाथों में सही। गरीबों के, स्वार्थपूर्ण तत्वों के हाथों में नहीं परन्तु फिर भी कोई भी हमें श्रम के फलों से तो वंचित नहीं रख सकता। आप देख रहे हैं कि थोड़े से प्रयास से गांव के लोगों ने किस प्रकार गांव की शक्ल बदल दी है। गांव के आसपास के मकानों के उनके आसपास की गलियां के साफ और सीधी हो जाने से उसकी शोभा बढ़ गई है। वर्षा के प्रारम्भ होने में थोड़े ही दिन हैं। यदि हम गांव के लोगों को उन पेड़ों का पता दे सकें जो कम पानी में जल्दी हो सकते हों तो वे कुछ ही दिनों में इन कांटों की बाढ़ों से छुटकारा पा सकते हैं। साथ ही उससे सारा गांव हरा भरा दिखने लगेगा।

तुमने तो आते ही गांव के लिए बहुत सोचना शुरू कर दिया।

"हर प्राणी की कुछ इच्छाएं होती है। मेरी भी इच्छा है कि कुछ काम ऐसा कर जाऊं जिससे मुझे भी लोग याद करें।'

"पूर्णिमा !

'हां, ठाकुर साहब ! मैंने पढ़ा है कि नेपोलियन के एक सेनापति के जब युद्ध में गोली लगी और वह मरने लगा तो उसने यही कहा कि उसे मरने का अफसोस नहीं है। है तो सिर्फ इस बात का कि जीवन में वह कुछ और कार्य ऐसे न कर सका जिससे आने वाली पीढ़ी उसे लम्बे समय तक याद रख सके।

"पर सबकी इच्छाएं तो एक-जैसी नहीं होतीं।"

'निश्चय ही। अपने अभाव के जीवन में मुझे पैसा सब कुछ लगता था। आपकी कृपा से मेरा वह अभाव दूर हो गया। आज मुझे उससे मोह नहीं है। अपनी वित्तैषणा की पूर्ति के लिए मैं आपकी शुक्रगुज़ार हूं। यश प्राप्ति की भावना लोकैषणा की पूर्ति मेरे चित्रों ने कर दी। कामैषणा के लिए मुझे कुछ कहना नहीं है। फिर भी जीवन अभाव में है ठाकुर साहब। आज तक के जीवन में मैं केवल लेकर खुश हुई हूं। देकर सुखी होने की अनुभूति मुझे यहां आकर ही हुई है। उदारता के आनन्द का यहां आकर ही मुझे रसास्वादन मिला है। कितने भाग्यवान हैं वे जिनमें उदारता आ गई है सब कुछ देने की शक्ति उत्पन्न हो गई है जो सर्वस्व लुटा कर सुखी और प्रसन्न रह सकते हैं।' क्षणएक चुप रहकर वह फिर बोल उठी—

'अभाव की अनुभूति ही गरीबी है। सिवाय एक मानसिक परिस्थिति के इसे और कुछ नहीं कहा जा सकता। प्रकृति की खुली पुस्तक को यदि हम पढ़ें तो हम तुरन्त यह अनुभव होगा कि कोई प्राणी यहां गरीब नहीं है। जैसा सिंह है वैसा ही सियार है। जैसा हाथी है वैसा ही हरिण है। यदि इसी प्राकृतिक परिस्थिति को हम अपने पर घटायें तो अपनी विषम परिस्थिति का बोध हमें तुरन्त हो जायगा।

इतने में ही पूर्णिमा ने देखा कि उससे बातचीत करने के लिए एक गरीब औरत कमरे के बाहर खड़ी है। उसे देखते ही वह उठकर उसके पास चली गई। पूछने पर मालूम हुआ कि उसके बच्चे को बुखार आ गया है। ठाकुर जयसिंह से आज्ञा ले वह कुछ दवाई कुछ खिलौने कुछ मिठाई लेकर उसके साथ चली गई।

कुछ घंटे बाद ठाकुर जयसिंह पूर्णिमा की वापिसी में विलम्ब देख उस पूर्वागन्तुका के घर गये तो उन्होंने देखा कि पूर्णिमा बालक को अपनी गोद में लिए हुए है और उसके सिर पर ठंडे पानी की पट्टी लगा रही है। ठाकुर जयसिंह ने देखा कि बालक भी पूर्णिमा की गोद में लेटा हुआ सुख का अनुभूति कर रहा है। उसके चारों ओर खिलौने और बालप्रिय मिठाई आदि पड़े हुए थे। आवश्यक आदेश देकर पूर्णिमा ठाकुर जयसिंह के साथ घर में

लौट आई।

इसी रात को भोजन आदि से निवृत्त होकर जब पूर्णिमा और जय सिंह महला की छत पर चादनी म घूम रहे थे पूर्णिमा ने पूछा—

'हमारे यहा आने स पूव वह समारोह की रात आपको याद है ?

' जरूर।

वह लापरवाह कलाकार भी याद है ?

कुमार ? '

हा ! उसका नाम सत्यकुमार है। '

'सो ?

कला सम्बन्ध म उसकी सूझ-बूझ बिलकुल अनोखी है।

यह तो उसकी बाता से मालूम होता था।

मैं उससे बहुत प्रभावित हू।

यह तो उसी दिन सबको मालूम हो गया था। '

यदि मुझे अपने स्वप्ना का साकार देखना है तो मुझे उसके पास लौटना होगा।

' पूर्णिमा ! तुम्ह क्या हो गया है ?"

हर जीवन म एक प्यास होती है ठाकुर साहब ! मेरी उस प्यास को एक वही मिटा सकता है।

तुमने कहा नही। हम उसे साथ ही ल आते।

क्या अब उस नही बुलाया जा सकता ?

और यदि वह न आये ?

यह नहीं हो सकता।

उसका पता ?

चित्रकार कुमार दे सकता है।

मैं कल ही चला जाता हू। पूर्णिमा ने ठाकुर जयसिंह की ओर अथ भरी निगाह म क्षणएक क लिए देखा। बोली—

मुझे ऐसी ही आशा थी। और साथ ही सरककर वह जयसिंह के सहारे लट गई। जयसिंह न पूर्णिमा को पकडकर चूम लिया। वह बोला—

कोई काम ऐसा नही है जिसे जयसिंह पूर्णिमा के लिए न कर

मग्ता हो।

दूसरे ही दिन जयसिंह बवई के लिए रवाना हो गया। सत्यकुमार को लेकर कुछ दिन के बाद जब वह वापिस अपने गढ़ में पहुचा उस समय सध्या की अधेरी सवत्र छा चुकी थी। इस समय पूर्णिमा अपने कमरे में मशीन मिलाई मशीन पर बच्चों के कपड़े सी रही थी। विभिन्न आकार प्रकार के अनका वस्त्र इस समय उसके कमरे में पड़े थे। गाव की चार पाच औरतें, उनके बच्चे इस समय उसके पास इसी कमरे में थे। जयसिंह और कुमार को अपने सामने देखकर वह बोली—

वेनर की सहली की शादी है। दोनों के पास पूरे कपड़े नहीं थे। मैंने ऐसा शाग्र जैसा अवसर तो जीवन में बार बार नहीं आता। मेरे पास फिजूल में पटिया भरी थी। मैंने उन्हें काम में ले लिया। बालक बालिकाओं ने जब उन्हें पहनकर देखा तो उनकी खुशी का अदाजा नहीं लगाया जा सकता था। उन्हें पहनकर मुझे उनके मुकाबले में एक प्रतिशत खुशी भी शायद न होती। उन्हें खुश और मस्त देखकर मेरी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। मैं चाहती हूं कि मेरी खुशी का यह स्रोत, मेरी यह भावना सनातन रूप से ऐसी ही बनी रहे।'

पर पूर्णिमा ! ये सब तो तुम्हारी अपनी पसन्द के वस्त्र थ।

इसी से तो मुझे और भी अधिक खुशी है।"

और कुमार साहब ! आपको हमने बहुत कष्ट दिया।

आप भूली नहीं याद फरमाया। इससे अधिक खुश किस्मती और क्या हो सकती है ?"

फिर हमारे लिए अफसोस की कोई बात नहीं है।

'निश्चय ही नहीं।

पूर्णिमा अब तक मशीन बन्द करके उठ खड़ी हुई थी। अन्य औरत और बच्चे भी एक ओर हो गये थे। पूर्णिमा ने उन्हें सबोधन करते हुए कहा—

बहिनो ! अब अपने कल मिलेंगे। इन वस्त्रों को समेटकर एक ओर रख दो। आज अपने घरों पर आप जा सकती हैं। और इतना कहकर वह जयसिंह और कुमार के साथ दूसरे कमरे में चली गई। तीनों ने एक ही कमरे में बैठकर खाना खाया और रात में देर तक बातें करते रहे। पूर्णिमा

न कुमार को इस बीच सक्षप म यह बता दिया कि वह गड और गाव को किस प्रकार प्रकृति और कला के सौन्दर्य का सगम बनाना चाहता है। कुमार को गढ के ही एक प्रासाद म आवास दे दिया गया।

कुमार का अपना काय प्रारम्भ करते-करते वर्षा ऋतु आ गई। गाव म सवत्र एक विशेष प्रकार के जगली कीकर के बीज लम्बी लम्बी कतारो म एक विशि ट योजना के अनुसार बो दिये गये। दखते दखते पौध निकल आये और तीव्र गति स नई जमीन पर बढने लगे। जगल को सारा और हरा और आर्थिक दष्टिकोण से उपजाऊ बनाने के लिए उसम सीना गर स्थिाओ म फोग कीकर बगी और सजडा के मना बीज गिरा दिये गए।

"मतलब ?"

'स्वण ! चादनी राता म जयसिंह के साथ महला की छता पर तुम्हे अकेला जान मैं देख नहीं सकता। मुझे राता जागना पड रहा है। जी चाहता है तुम्हे रोक दू।' पूर्णिमा ने सुनकर मुस्करा दिया। वह उठकर एक ओर चलने लगा। कुमार उसके पीछे चल दिया। वह बोला—

"सृष्टि के प्रारम्भिक प्यार की यह हरकत आज भी उसी प्रकार सत्य है स्वण ! तुम उठी। एक अदृश्य डोर मे बधा हुआ मैं तुम्हारे पीछे पीछे हो गया। तुम रुकी मैं भी रुक गया। जी चाहता है तुम्हे देखता रहू।" वह बठ गई वह भी बठ गया। बोला—

दो आत्माओं की यह छोटी सी हरकत शब्दा म साहित्य बन गई। स्वरा म मुखरित हुई तो वही गीत बन गई। लय म बाध दी गई—तो वह नाच हो गई। इसी को यदि किसी पट पर अंकित कर दिया जाए तो यह कलाचित्र बन जाएगा।'

कुमार !

हा स्वण ! य मानव भावनाए, उनसे प्रेरित य प्राकृतिक हरकत ही हमारी ललितकलाओ की आधार शिलाए हैं। जिस दिन एक प्राणी ने दूसरे प्राणी को प्रथम बार प्यार स देखा वही दिन हमारी ललितकला का प्रारम्भिक दिन था। आज भी इसान उसी तरह देखता है उसी तरह सोचता है उसी तरह महसूस करता है। मनुष्य होकर हम सष्टि स भिन्न नहीं हो गए, पूर्णिमा ! क्षणेक विरमकर उसने कहा— हृदय की वही प्रारभिक पुकार प्रेम, माव, भावना उत्साहित रूप म आज भी हमारा सास्कृतिक बनी है। भागवत के अमर गीत, जयदेव का गीत गोविन्द तुलसी के कवित्त सूर के पद, मीरा के भजन, विद्यापति की पीड रवीन्द्र की गीतांजलि हमारी उसी प्रारम्भिक पुकार के प्रतीक है। कुमार ने महसूस किया कि पूर्णिमा उसकी बात ध्यान स सुन रही है। वह कहता गया—

सदिया गुजर गई। हजारों लखक मर गए कवि समाप्त हो गए, सगीतज्ञ और गायक चल गये चित्रकार और मूर्तिकार अस्त हो गए। मगर, वह पुकार वह भावना आज भी जीवित है।'

'सत्य ! मालूम होता है तुम बहुत उद्विग्न हो।'

अतप्त हू, स्वण ।'

मुझे आज्ञा दो ।'

"मैं तुम्हारे पास आ सकता हू ?'

'क्या आपत्ति है ?' वह पूर्णिमा के पास सरक गया ।

'तुम्हे स्पर्श कर सकता हू ?'

क्या नही ? सत्य ने पूर्णिमा का हाथ पकड लिया ।

स्वण ! मैं तुम्हे अपनी कब कह सकूगा ?

मैं तुम्हारी हो हू सत्य ।

स्वण ! मैं स्वप्न तो नही देख रहा हू । अनेक बार मैंने तुम्हे स्पर्श किया है । मगर जब भी मैंने तुम्हे अपना बनाने की कोशिश की मेरी आखें खुल गइ जैसे स्वप्न देख रहा था । सत्य कहो स्वण ! आज भी वह स्वप्न तो नही है ?

मगर इसी क्षण उन्होने प्रतिक्षण पास आती हुई जीप की रोशनी देखी । पूर्णिमा उठ खडी हुई । कुमार भी उठ बैठा । परन्तु उसने सुना—

सत्य ! गढ मे रहते अब कोई रात ऐसी नही गुजरेगी जब मैं तुम्हारे पास न आऊ । ठाकुर साहब सवारी ले आए है । अभी अपने चलें ।

उन्होने बच्चो को इकट्ठा किया और जीप के पास आकर ठहरते हुए तब उस पर बैठकर गाव की ओर चल दिये ।

कुमार ने यहा आने के बाद कई चित्र बनाकर गढ के महलो और उसके गलियारो को सामन्ती वातावरण के अनुकूल सजा दिया था । इस समय वह अपने आवास पर ही कुछ मूर्तियो पर काम कर रहा था । ठाकुर जयसिंह और पूर्णिमा की इच्छाओ और मन्तव्य को समझते हुए उसने दो तीन मूर्तिया बनाकर गाव के सार्वजनिक स्थानो पर स्थापित भी कर दी थी । इस समय जिन मूर्तियो पर वह काम कर रहा था वे पूर्णिमा की थी । पूर्णिमा और ठाकुर जयसिंह कई बार दिन और रात मे साथ-साथ तथा कभी अकेले भी कुमार के आवास पर उसके निर्माण कार्य को देखने आ जाते थे । इधर कई रातो से जयसिंह देख रहा था कि पूर्णिमा पूर्णरूप से अपने मे नही है । एक दिन उसने नीद मे शायद स्वप्न मे उसे यह कहते हुए भी सुना—

'सत्य ! मैंने विवाह नहीं किया। यह प्यार का बन्धन नहीं है। सुविधा का सम्बन्ध है।' सुनकर जयसिंह को बाकी रात काटनी हराम हो गई। इस समय पूर्णिमा गहरी नींद में सो रही थी। महला की इस छत पर सिवाय इन दो के और कोई नहीं था। उसने उठकर दो गिलास पानी पिया। फिर चांदनी के स्वच्छ प्रकाश में सोई हुई पूर्णिमा को उसके बिस्तर पर पास बैठ देखने लगा। क्षणएक के लिए उसने चाहा कि उसे जगा दे। मगर उसने उसे जगाया नहीं। उसके मुंह की ओर झुका परन्तु पुनः बिना स्पर्श किये उठ बैठा। जो थोड़ा सा अचल पूर्णिमा के शरीर को ढक रहा था वह भी उसने दूर कर दिया। कई क्षण वह उसे उस निवसन स्थिति में देखता रहा। आज न जाने उसकी इच्छा क्या उसे स्पर्श तक करने की न हो रही थी। कुछ ही क्षणों में उसने उसे पुनः आवरित कर दिया। वह छत पर अपनी किसी विचारधारा में घूमने लगा। उसने देखा कुछ बादल चांद को कभी-कभी आकर ढक देते हैं। थोड़ी गरज हुई। बिजली चमकी। कुछ बूंदें गिरीं। आस पास के पेड़ों पर बैठे मोर एक एक करके बोल उठे। पूर्णिमा की नींद खुल गई। उसने देखा जयसिंह अपने बिस्तर पर नहीं है। खुले शिथिल वस्त्र उसने ठीक किए। उठा तो देखा जयसिंह दूर छत के एक किनारे अपनी किसी विचार-मुद्रा में खड़ा है। वह उठकर उसके पास आई। बोली —

"नींद नहीं आई ?'

"तुम भी तो उठ खड़ी हो।

"बादल की गरज, बूंदें ये मोर सोने थोड़े ही देते हैं। क्या सोच रहे थे ?'

'बता दूंगा।

'कब ?

"एक बात पूछूं ?'

जरूर।

मैं तुम्हें चाहता था तुम मिल गई पूर्णिमा ! क्या तुम्हारा प्यार भी मुझे मिला ?

"क्या नहीं ?'

'मगर कितना'

'सरोवर से कोई प्यासा यदि पानी पी ले तो सरोवर का पानी घटता नहीं है। सागर सरिता यह चांदनी संसार को सब कुछ देकर भी अपनेमें पूर्ण है। नारी प्यार लुटाकर भी सर्वप्रेममयी है ठाकुर साहब! आपको कितना प्यार चाहिए?

पूर्णिमा?'

"हां ठाकुर साहब! प्यार को आप सीमाओं में बांधना चाहते हैं? नारी का प्यार अथाह है अगाध है! आप उसे सीमित करना चाहते हैं। नारी के लिए यह असम्भव है ठाकुर साहब।"

पूर्णिमा!

जी!'

'आज मैंने तुम्हें इस चांदनी में निवसना के रूप में देखा।' पूर्णिमा चुप रही। उसने सुना—

मैं सोचता था कि इस तरह देखकर शायद मेरी प्यास कुछ कम होगी, परन्तु, वह और अधिक हो गई है।'

'प्यास पीने से मिटती है ठाकुर साहब!

मैं भी यही सोचता था पूर्णिमा!'

'फिर?'

'इधर कुछ दिनों से देखता हूं तुम्हारे स्पर्श में चुम्बन में वह पहले जैसी गरमी नहीं है। शीतल शरीर शीतल अधर बन्द आंखें यह कैसा प्यार है, पूर्णिमा?

संघर्ष में तीव्रता, गरमी होती है ठाकुर साहब! समर्पण सदैव शान्त और शीतल होता है।

जयसिंह ने पूर्णिमा की आंखों में देखा। उसने पूर्णिमा के अधरों पर अपने अधर लगा दिये। पूर्णिमा की आंखें इस समय बन्द थीं। जयसिंह इस रहस्य को न समझ सका। इसी क्षण पुनः बूंदें गिरने लगीं। जयसिंह और पूर्णिमा नीचे महलों में चले गये।

पूर्णिमा को अब भी अवसर मिलता, वह कुमार के आवास में अवश्य जाती। उसका दिन प्राय. गांव के असहाय बच्चों के लिए आवश्यक वस्तुएं प्राप्त करने और उनकी जरूरतें जीवन में बीत जाता। उसके खाने-पहनने

और व्यवहार म गरीबा जमी मान्गी आ गई थी। इधर कई दिना से उसन अपने बहुमूल्य वस्त्रो को बालक-बालिकाओ के वस्त्रा मे परिवर्तित कर दिया था। अपने अनेक छोटे मोटे जेवर भी उसने अलग-अलग रखकर गाव के बच्चा के नाम उनके ऊपर के आवरणा पर लिख दिये थे।

जयसिंह को सुनाकर ही वह अपने समय म कुमार के पास जाती। यह उसका नित्य का नियम बन गया था। सदैव की भाति आज भी जब वह कुमार के आवास म पहुची ता उसन देखा कि कुमार उसी की मूर्ति पर काम कर रहा है। आज वह उसके पास नही गई बल्कि दूर से अधेरे म खडी होकर देखने लगी। उसने देखा कि कुमार मूर्ति के बाला को बार बार सहला रहा है। दूसरे ही क्षण उसने उसके कपाला को चूमते देखा। अगले क्षण उसके अधर उसके अधरा पर थे। गर्दन उरोज कमर कपोल, नयन, ललाट—कोई भी अंग ऐसा नही था जिस पर उसने प्यार न दिया हो प्यार की वर्षा न की हो। पूर्णिमा दूर खडी यह सब देखती रही।

उधर जयसिंह की आख खुल गई। पूर्णिमा को अपने पास न पाकर पहले तो उसने इधर उधर देखा, मगर वह उसे दिखाई नही दी। कुछ क्षण की प्रतीक्षा के बाद उसका ध्यान छत के प्रवेश द्वार की ओर गया। पूर्णिमा की चप्पल बिस्तर के पास नहीं थी। प्रवेश द्वार भी खुला हुआ था। वह सीधा कुमार के आवास की ओर चल दिया। वहा पहुचकर उसने देखा कि पूर्णिमा कुमार के सामने खडी है। वह अधेरे म एक ओर खडा हो गया। उसने सुना—

'मैं तुम्हारे सुख को अस्थायी बनाना नही चाहता स्वर्ण।'

'अस्थायी जीवन म स्थायी सुख की बात करने हो सत्य।'

फिर भी मैं इस योग्य नहा हू कि तुम्हारी हानि की किसी अश म पूर्ति कर सकू।'

'सत्य ! मुझे दुख है कि तुम अपने सिद्धान्ता पर अपने विचारपूर्ण निर्णय पर विश्वास नही है। क्या एक दिन तुमने यही कहा था कि इस जीवन म सबसे बडा नुकसान स्वय इस जीवन का है और इस नुकसान के आगे उसके मुकाबले म जन्म और मृत्यु के बीच होने वाले सारे नुकसान नगण्य हैं। मैं तुम्हारी इस बात पर बहुत प्रभावित हुई थी और आज तुम्ही

इसे अथहीन साबित कर रहे हो। देखती हू या तो यह सिद्धान्त तुम्हारा अपना नही है, या तुम्हें अपने सिद्धान्त पर जीने की आस्था नही है।

स्वण !

'हा सत्य। नारी का प्रेम मजाक नहा है। मैं जो कहती हू वही अथ भी रखती हू। तुम बोलते क्यों नहीं ? चुप क्यों हो ? कितनी बार मैं एक ही प्रश्न तुमसे कर चुकी हू। क्या तुमने पूछा था कि वह हमारा मिलन स्वप्न तो नहीं था ? तुम्हारे स्वप्नों पर तो मेरा अधिकार नहीं है सत्य ! पर मेरे जीवन पर तुम्हारा अधिकार है। यह आज स्वप्न नहीं है। जीवन है। विश्वास करो सत्य ! बोलो क्या चाहते हो ? कुमार पूर्णिमा की ओर अपलक देखने लगा। उसने उसे अपने बाहुओं में कसकर बाँध लिया और उसके अधरों पर अपने अधर एक अतृप्त आवेग में लगा दिये।

जयसिंह के शरीर में आग लग गई। वह घृणा क्रोध में पागल हो उठा। उसके लिए यह अकृतज्ञता असहनीय थी। उसने सुना—

'स्वण ! तुम जयसिंह से प्यार करती हो ?'

'मैं उनकी इज्जत करती हू सत्य !'

प्यार नहीं ?

'प्यार आवेग है, इज्जत कर्तव्य। पर तुम इन प्रश्नों में न उलझो सत्य !'

जयसिंह ने देखा कि पुन दोनों एक गूढ़ आलिंगन में एक हो गये हैं। इस बार पहल पूर्णिमा ने की। उसने कुमार के अधरों पर अपने अधर रख दिये थे। देखकर जयसिंह वहा से चल दिया। वह प्यार कितना बार दोहराया गया किस तरह व्यवहृत हुआ जयसिंह ने नहीं देखा। वह वापिस लौटा उस समय उसके पास अपना वह दूत थी। उसकी आग प्रति हिंसा में जल रही थी। पूर्णिमा और कुमार इस समय एक ही पलंग पर बैठे हुए थे। उसने देखा कि पूर्णिमा उसके जानुओं पर सो रहा है। कुमार उसके बाल बालों को सहला रहा था। कुछ क्षण के बाद जयसिंह ने सुना—

अब मैं जा सकता हू ?

अच्छा स्वण ! फिर कब आओगे ?'

"कल। इसी समय।

वह उठो। मगर इस समय उन्होंने देखा कि जयसिंह ब दूक ताने सामने खड़ा है। वह बोला—

'वह कल तुम्हें नहीं आयगा, कुमार!'

'क्या?" आवाज पूर्णिमा की थी। वह कुमार और जयसिंह के बीच म आ गई। बोली—

"प्रतिहिंसा मे पागल न बनो, जयसिंह। एक ओर अपराध है तो दूसरी ओर क्षमा भी है। क्रोध के आवेग मे काम करने से क्षमा से मिलने वाली शांति और आनन्द नष्ट हो जाते हैं।'

'पूर्णिमा! हट जाओ। अकृतज्ञ।'

कभी नहीं। जयसिंह की बन्दूक की नली अपने सीने पर लगाकर वह बोली—

'यदि पतित्व वितरण किया जा सकता है तो पत्नीत्व के वितरण म भी कोई आपत्ति नही हो सकती ठाकुर साहब! पुरुष का प्यार और नारी का प्यार परस्पर भिन्न नही हैं। दोनो इन्सान हैं।

जयसिंह के हाथ से बन्दूक गिर गई। वह हतबुद्धि नतमस्तक कुमार के आवास से चल दिया।

पूर्णिमा ! उस रात मुझसे भूल हो गई।

कोई बात नही।

'मैं चाहता नही था कि उस घटना को फिर दोहराऊं। पूर्णिमा चुप रही। उसने सुना पर उसे वह बिना जस का मानता नही है। एक अनाहित-सी उस रात म बात बनी रहता है।

"कहिये।

तुम्हारा सत्य तो चला गया।

उसे जाना ही चाहिए था।

'तुम्हे दुख है ?

अपने लिये नही उसके लिए।

एक दिन स्वप्न म तुम कह रही थी— मेरा सम्बन्ध प्यार का नहीं सुविधा का है। '

स्वप्न की बात पर तो इ सान का अधिकार नही रहता।'

अचेतन का सत्य सत्य नही होता ?

'हो भी सकता है नही भी हो सकता।

अब तुम क्या कहती हो ?

यह बात विश्लेपण के योग्य नही होती। ठाकुर साहब।'

पूर्णिमा ! सत्य के साथ तुम्हारा अकले जाना मुझे अच्छा नही लगता था। रात को उसके कमरे म तुम्हारी उपस्थिति मेरे लिए असहनीय थी।

पूर्णिमा चुप रही। उसने सुना— 'पूर्णिमा ! तुम नही जानती कि तुम्हारे मुह से एक बात सुनने के लिए मैं कितना आतुर हू।

फरमाइये।

क्या तुम एक बार भी यह नही कह सकती कि तुम मुझे प्यार करती हो ? पूर्णिमा ने जयसिंह की ओर एक अथपूर्ण दृष्टि से देखा। वह बोली !

नहीं। उसन सुना—'वोलो।

"क्या मैंने आपको प्यार नहीं दिया ?'

फिर कहा न, पूर्णिमा कि तुमन मुझे प्यार किया, प्यार किया।'

'ठाकुर साहब ! मुझे कहन म आपत्ति नही है, पर इस कहन का मूल्य भी कुछ नही है कारण आपकी उदारता के लिए मैं आपकी आभारी हू।'

"फिर तुम वही बात करती हो जो मेरे दुख का कारण है। तुम कहती क्या नही कि तुम मुझे प्यार करती हो। पूर्णिमा ! रगभूमि का वह प्रथम प्रदान दिन याद करो जब तुम्हारी और मेरी प्रथम भेंट हुई थी। उस रात ही मुझे यह निश्चय हो गया था कि एक दिन मैं तुम्हे अपनी बना सकगा।

आपकी उदारता न मुझे खरीद लिया। मैं आपकी आभारी हू।

प्यार खरीदा नही जा सकता। आज मैं महसूस करता हू पूर्णिमा। उदारता कृतज्ञता पैदा कर सकती है। प्यार नही। एक दिन तुम्हारे चुबन म आलिंगन म गरमी थी। तुम्हारी श्वास एक आवेश मे तीव्र चलने लग जाता था। पर आज वह स्थिति नही है। तुम्हारे अधर गरम नही रहते। तुम्हारे आलिंगन म शीतलता है। तुम्हारे श्वास की वह ऊष्मा चली गई है। मैं क्या समझू पूर्णिमा ?'

मैं यहा से चली जाऊगी ठाकुर साहब।

"यह मैंने कब कहा पूर्णिमा ?

अच्छे आदमी हर बात कहन थोडे ही है ?

गलत न समझो पूर्णिमा ! मैं तो केवल तुम्हारा प्यार चाहता हू। वह प्यार जो तुमने सत्य को उस रात दिया था। यदि उम न भी द सको तो तुम्हारे केवल यह कहने मात्र से कि तुम मुझे प्यार करती हो मैं सताप कर लूगा।

उस प्यार से सताप न कर सकोग ठाकुर साहब !'

मतलब ?

जिन दिनो मैंन समपण किया वह स्वीकार न कर सका। जिस दिन उसने समपण मागा, मैं न द सकी।

"कारण ?'

'मैं बीमार हू ठाकुर साहब।

पूर्णिमा।'

'सत्य दया का पात्र है ठाकुर साहब। मुझे दुःख है कि मैं उसे अपने आपको समर्पित करने की शारीरिक स्थिति म नही हू। उस रात भी नहीं थी। वह चाहता तो भी नही। आप-जैसे उदार व्यक्ति के जीवन को भी मैं अब खतरे म नही डाल सकती।'

'पूर्णिमा ?'

"सत्य कहती हू ठाकुर साहब।

"पूर्णिमा! बात क्या है ?'

'मैं यक्ष्मा से पीडित हू।

किसने कहा ?'

मैं जानती हू।'

कैसे ?

'मेरे श्वास म खून आता है।

'कब से ?'

पूर्णिमा कभी उसके पहल से। बीच मे बन्द हो गया था। सत्य के यहा आन के बाद फिर शुरू हो गया।'

और इसीलिए तुम मुझसे दूर

'मुझे अफसोस है, ठाकुर साहब!'

'इलाज के लिए आप वापिस बम्बई चल सकते हैं।

शरीर तो सदा रहता नही है।

अपने सम्बन्ध मे मुझे यह न सुनाओ पूर्णिमा। मैं यह सहन न कर सकूगा।

'गाव के पाच सात घरो मे भी यह रोग व्याप्त है ठाकुर साहब। बालक बालिकाए ग्रसित न हो इसलिए उनका प्रबन्ध पहले कर दना चाहिए।

जरूर करूगा, पूर्णिमा। *जयसिंह ने देखा कि पूर्णिमा की आखें* सजल हो गई हैं। उसने उन्हे प्यार स पोछ दिया।

ठीक इसी समय जयसिंह को सूचना मिली कि अभी अभी उनकी पत्नी

1

ठकुरानी साहिबा गढ म तारीफ ले आई है। पूर्णिमा ने भी उनके स्वागत के लिए जयसिंह के साथ जाना चाहा परन्तु जयसिंह के आग्रह पर वह वहीं रुका रही। कुछ ही क्षणो म उसन महल म एक विवादपूर्ण परिस्थिति की उत्पत्ति महसूस की। पूर्णिमा न कान दिय ता सुना—

य राजमहल है। यहा उन वीरागनाओ का आवास निवास रहा है जिन्होन अपनी सतीत्व रक्षा के लिए अपनको आग की लपटो की भेंट चढा दिया। शौय, शूरता, बलिदान की इस जन्म और क्रीडास्थली पर व्यभिचार के अड्डे कायम नहीं किय जा सकते। यह नाटक अथवा सिनेमाघर नही है जहा ऐसी तस्वीरें और मूर्तिया लगाई जाय। मेरे रनवास को इस तरह अपवित्र करन का आपको किसन अधिकार दिया ?

आप चुप नहीं रह सकती ? धीरे नही बोल सकती ?

'बिलकुल नही। मन सब सुन लिया। विक्रमपुर की रानी अभी जिंदा है। उनकी नसों मे भी महामतियों का राजपूती रक्त दौड़ता है। अपने रनवास का वह नाचने गाने वाली वेश्याओ के आवास म परिवर्तित नही कर सकती।'

इन्सानियत न रख सकें तो व्यवहार ता न छोडें।

अपने घर म मुझे सलाह की जरूरत नही है। किस आत्मा की पूर्ति क लिए आप इस गाव म लाए है ? किस आचरण की शिक्षा के लिए इन तस्वीरो की आवश्यकता है ? शूर सामन्तो की सन्तानो को य आपकी तस्वीरें और मूर्तिया क्या प्रेरणा देंगी यह भी आपने सोचा है ?'

'आप समझने की चेष्टा करें।'

'व्यभिचार को समझने की चेष्टा करूं ? पाप का अपने घर म लाने की बात करू ? अशोभनीय अत्याचार का सहू ? लज्जाजनक असामाजिकता को अपनाऊ ? क्या अब यही आपकी विचारधारा बन गई है ?'

आप वक्त देखें। अवसर समझें। जो घर में महमान हैं उनका भी ख्याल करें उनकी भावनाओ का सम्मान करें। अप्रिय बात कहने से आपकी इज्जत अधिक बनेगी। किसी की आत्मा को दुःख पहुचाने स आपका कोई लाभ नहीं होगा।'

ठाकुर साहब ! थोड़े से सम्पर्क में हो कितना परिवर्तन आपमें आ गया है उस पर आप विचार करें। रही बात मेहमान की वह बराबर की हैसियत पर आश्रित है। पाप को बीमारी का, मेहमान बनाने की बात आपसे नई सुनी है। अपने आदेश पर अपने अधिकार पर अपनी भावना पर मुझे कोई बहस स्वीकार नहीं है। ये तस्वीरें ये मूर्तियां यह सजावट इसी क्षण यहां से, इन महलों से इस गढ़ से हट जाने चाहिए।'

आप कुछ भी धैर्य नहीं रख सकती ?'

'इन महलों के अलावा और कोई भी स्थान इनके लिए उपयुक्त नहीं है ?

समय भी तो चाहिए।

और मुझे अपने लिए स्थान नहीं चाहिए ? देखती हूं ये कैसे नहीं हटते हैं ?'

और यह कहते कहते ठकुरानी ने अपने रोष के आवेग में पूर्णिमा की एक नवनिर्मित मूर्ति को धक्का देकर नीचे गिरा दिया। ज्यों ज्यों ठाकुर जयसिंह ने उसे रोकने की, समझाने की कोशिश की उसका क्रोध और अधिक बढ़ता गया और देखते देखते उसने सुसज्जित इस कला-कक्ष में अपने ध्वंस विध्वंस से तबाही मचा दी। कोई तस्वीर कोई कलाचित्र कोई मूर्ति कोई सज्जा का सामान उसने ऐसा नहीं छोड़ा जिस पर उसके विनाश की छाप न हो। अपना काम पूर्ण करके उसने पुकारा—कोई है '

जी ! आवाज़ आई।

इन सबको इकट्ठा करके गांव के कूड़ाखाने पर डलवा दो।

जी ! एक दासी ने प्रवेश करके कहा।

'सुना नहीं ? मैं हुक्म देती हूं। जल्दी करो।

मुझे इजाजत फरमायें तो यह सेवा मैं करूं ?' आवाज़ पूर्णिमा की थी।

'तुम ?

'मेरा नाम पूर्णिमा है।'

'तुम ही वह नर्तकी हो ?

मैं आपकी दासी हूं ठाकुर साहब मुझे अपना साथी बनाकर लाये थे।

'मैंने कहा वह सब सुन लिया ?'

'और भी चाहे जो कुछ आप फरमा सकती हैं। आपका घर है। आप मालिक हैं।

जिस जिस जगह इन महलों मे तुमने अपने पाव रखे हैं वे सब फर्श हम धुलवाने होगे।

'अच्छा ही है रानी साहबा।

मेरे सामने आने को तुम्हे किसने कहा ?'

अपने आप ही मैं हाजिर हो गई।'

अपने आप ही चली क्या न गई जब तुमने सब कुछ सुन लिया था।"

मजबूरी थी, ठकुरानी साहबा। पर, जल्दी ही चली जाऊगी। पहले चली जाती तो आपके दर्शन कैसे होते ?"

नर्तकी! गढ के इन महलो का इनकी दीवारो को फर्शों को, छतो को तुमने अपनी उपस्थिति से अपवित्र कर दिया है।

'क्षमा चाहती हू ठकुरानी साहबा। पर, क्या इन महलो म पहले कभी नृत्य नहीं हुआ ?'

हुआ है।

'क्या मेरे आने स पहले इन महलो की दीवारो म सगीत राग रागिनी गुंजित नही हुए ?"

'हुए हैं।

'क्या गढ के इस प्रागण म, इन महलो म राग रग विलास की अनेक असभ्य घटनाए नही घटी ?

क्या नहीं ?'

फिर मेरे आने से क्या अतर आ गया ? मैं भी तो एक नारी हू।

नारी के नाम पर कलक हो। भोग की वस्तु। नारी।'

कौन नारी भोग की वस्तु नही है रानी साहबा! अपने पति की सम्पत्ति की प्रतीका और प्रदर्शनो के अलावा और भी कुछ वह कभी बन पाई है ? विवाह की एक आकस्मिक घटना पर किसी भी नारी को इतना नाज नहीं होना चाहिए। जन्म और विवाह

"पूर्णिमा ! तुम अभिनेत्री हो। तुम्हें संवाद बोलने आते हैं। पाप को व्यभिचार को एक सुन्दर शैली में वर्णन करना तुम जानती हो। पर, इससे तुम्हारी स्थिति में तुम्हारे व्यक्तित्व में कोई उत्थान नहीं आ सकता। अपने पाप को तुम पुण्य की संज्ञा दो तो वह पुण्य अथवा गुण नहीं बन जायगा। शब्दों की परिभाषा बदल देने से उनके अर्थ नहीं बदल जाते। वासना को प्यार कह देने से वह प्यार नहीं बन जाती। परन्तु उसने देखा कि पूर्णिमा उनके सामने कक्ष में नहीं है। ठकुरानी के आखिरी वक्तव्य के प्रारम्भ से पहले ही वह उसकी उपस्थिति से दूर महलों के नीचे जा चुकी थी।

ठाकुर जयसिंह अब तक कुछ बोले नहीं थे। वे किसी को कुछ भी कहने की परिस्थिति में नहीं थे। पूर्णिमा के चले जाने के बाद उन्होंने कहा—

'आज आते ही इस तरह का अवसर आप न लेतीं तो कुछ बुरा न हो जाता।' मगर, ठकुरानी सान्त्वना उन्हें कुछ कहती उससे पहले ही वे भी महलों के नीचे आ गये।

उन्होंने देखा कि पूर्णिमा की मन स्थिति ठीक नहीं है। स्वयं उससे कुछ कहने के पहले वे उससे कुछ सुनना चाहते थे जिससे उसकी इच्छा का भान उन्हें हो जाय। वे उसके पास आये उस समय वह थकी हुई सी बिलकुल शान्त एक खटिया पर पड़ी हुई थी। उसकी आँखें बन्द थीं और उसका एक हाथ उसके सिर पर था। ठाकुर जयसिंह आकर उसी के पास बैठ गये थे। पूर्णिमा ने आँखें खोलीं और जब उसने जयसिंह को बैठे देखा उसके चेहरे पर एक सूखी अर्थहीन निर्जीव सी मुस्कराहट दौड़ गई। क्षणएक में ही उसने कहा—

'मैं इस स्थान को आज ही छोड़ना चाहती हूँ। आप सवारी का इन्तजाम फरमा सकेंगे?"

'ऐसी कोई बात नहीं है, पूर्णिमा ! इतने सामान को इतनी जल्दी मे हम ठीक भी नहीं कर सकते।'

'सामान कुछ नहीं है, ठाकुर साहब ! मेरे लिए दो साड़ियां और एक शाल बहुत हैं।"

और बाकी ?'

'वह सब तो मैं कभी की दे चुकी। सिर्फ वितरण बाकी है जो केसर की मा कर देगी।'

जेवर आदि ?"

'उन सब पर मैंने जिस जिसको जो देना था अलग अलग नाम लिख दिए हैं। उनकी शादी विवाह का काम उनसे चल जायगा।'

'पूर्णिमा यह तुमने क्या किया ?

'मेरा उन पर अधिकार नहीं था ?'

"अधिकार था। पर, वे तुम्हारी बहुत प्रिय वस्तुएं थी।"

'आप समझते हैं कि वे बच्चे और स्त्रियां मुझे उन वस्तुओं से कम प्रिय थे ? ठाकुर साहब ! उनके देने मे, उनके वितरण म जो खुशी मुझे हुई है उसका एक न्यून अश भी मुझे उन्हें रखकर नहीं होती। हा, तो आप प्रबन्ध कर सकेंगे ?"

'पूर्णिमा ! आज जो कुछ हुआ उसके लिए मुझे बहुत दुःख है।

"रानी साहबा मुझे कुछ कहकर हलकी हो गई। उन्होंने अपने विचार व्यक्त किए। कोई असत्य बात भी नहीं कही। दुःख किस बात का ?'

फिर भी मैं महसूस करता हू कि उन्हें ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए था।'

जो कुछ हुआ वह तो बीत गया। हम तो अब भविष्य की बात करनी चाहिए। आप तैयार है ?'

"आप निश्चय कर चुकी ?'

"हा। केसर की मा को बुला दीजिये। वह गाव की स्त्रिया और बालक-बालिकाओं को इकट्ठा कर देंगी। चीजें भी उनके सुपुर्द कर दूंगी और मिलना भी हो जायगा।

'पूर्णिमा ! मेरी प्रार्थना पर पुनर्विचार नहीं कर सकती ?'

'मेरे लिये इतनी जिद को भी आप नहीं निभायेंगे ?'

सुनकर ठाकुर जयसिंह निरुत्तर हो गये। उन्होंने सब प्रबन्ध पूर्णिमा के आदेशों के अनुसार कर दिया।

जल्दी ही आप गढ के दरवाजे के आगे रवाना होने के लिए खड़ा हो गई। पूर्णिमा को उस पर चढ़े अभी कुछ ही क्षण बीते थे। गाव के अनेक

"जीवन और मत्यु दोनो आकस्मिक घटनाए हैं। इन पर प्राणी का कोई प्रभुत्व नही है। इसलिए व्यक्ति को चाहिए कि जिस इच्छा की वह पूर्ति न कर सके उसकी पूर्ति एस जिम्मेदार हाथो म छोड द जो उसी के समान सवेन्दनशील हो। इससे एक प्रकार की शाति मिलती है।' सुन कर ठाकुर जयसिंह चुप हो गये। पूर्णिमा ने देखा कि उसकी इस बात से ठाकुर साहब को कोई खुशी नही हुई है बल्कि रज हो हुआ है। वह बोली—

'मेरी सपत्ति पर मेरा अधिकार नही है ?

क्या नहा, पूर्णिमा ?

'आपको मुझसे पूरी कीमत नही मिली ?

"मैंने सौदा नही किया था, पूर्णिमा। तुम भी मुझे गलत समझोगी ऐसी आशा मुझे नही थी।'

फिर वसीयत म आपको आपत्ति क्या है ?"

"तुम्हारे अन्त की किसी बात को मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता पूर्णिमा। सुनकर वह हस पडी। ठाकुर जयसिंह की आखो म आसू छलकने लगे। वह बोली—

'एक दिन अन्त आना ही है ठाकुर साहब। जिसने जन्म लिया है वह उस दिन से बच नही सकता। फिर अफसोस कसा क्यो ? जन्म और मत्यु दोनो जीवन की प्राकृतिक घटनाए है। मैं आप और दुनिया के समस्त प्राणी इस प्राकृतिक नियम के अपवाद नही। प्राणी की सवेदनाओ म उनके आदान प्रदान म उसका जीवन है। बाकी सब यही रह जाता है। जीवन के साथ न कुछ लाया जा सकता है न साथ कुछ ले जाया ही जा सकता।'

'तुमको ऐसी बातें करते सुनकर मैं अपनेको काबू म नही रख सकता पूर्णिमा। मुझे समय से पहले निराश न करो।

वह पुन मुस्करा उठी। जयसिंह की आखो म अश्रु प्रवाह चलने लगा। उसने ठाकुर जयसिंह का हाथ अपनी हथेली मे ले लिया। कुछ क्षण विरमकर वह बोली—

'ससार की इस सराय म परस्पर मिलना, बोलना, समझना ही एकमात्र तथ्य है ठाकुर साहब! कलाकार सत्यकुमार का शायद

अपने यहा लौटने की खबर नही है।"

'उन्हें बुला दू ?'

"आपने उसे माफ कर दिया ?'

हा, पूर्णिमा ! व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए किसी का दण्ड देना मैं अमानुषिक समझने लगा हू। ऐसी क्षमा मे एक अजीब शाति है जो उसे व्यवहार मे लाने वाला ही समझ सकता है।'

'ठाकुर साहब ! आप कितने अच्छे हैं।" क्षणएक रुककर वह बोली—'उस धर्म शिक्षा, विद्या, बुद्धि से इन्सान का क्या फायदा जिसे वह अपने जीवन मे, व्यवहार मे न ला सके। क्या आप सचमुच सत्यकुमार की तलाश करेंगे ?'

क्या नही, पूर्णिमा। मैं जरूर उसे यहा लाऊगा। सुनकर पूर्णिमा की आखें क्षणएक के लिए सजल हो गई।

ठाकुर जयसिंह ने सत्यकुमार की इसके बाद तलाश शुरू की मगर उसे वह न मिल सका। पूर्णिमा जानती थी कि सत्य का बबई मे कोई निश्चित पता नही है और इसलिए वह जयसिंह को उसके न लाने के लिए दोष नही दे सकती थी। इतना अवश्य था कि जब भी जयसिंह बाहर से घर लौटता सत्य का जिक्र उनकी पारस्परिक वार्ता मे हो जाता।

एक दिन पूर्णिमा चाय पीकर सुबह सुबह अपने कमरे मे बैठी एक पुस्तक पढ रही थी कि उसे सूचना मिली कि स्थानीय एक कला परिषद का शिष्टमडल उससे मिलने के लिए आया है। इस सूचना से उसे खुशी और आश्चर्य दोनो हुए। कमरे मे आकर बैठने के बाद एक प्रतिनिधि ने कहा—

देवी पूर्णिमा ! हमारी परिषद मे न कोई धनवान व्यक्ति इसका सरक्षक अथवा सदस्य है और न कोई ख्यातिप्राप्त कलाकार ही हमारी मदद मे है जिसके नाम के सहारे हम कुछ आर्थिक लाभ उठा सकें। छोटे मोटे विविध सास्कृतिक कार्यक्रम इधर उधर देकर हम किसी तरह अपना गुजारा चलाते हैं। धनवान उद्योगपतियो व्यापारियों और सेठो के पास जब भी हम चन्दे के लिए गए हैं उन्होंने हमें खाली हाथ लौटाया है। पूछते हैं तुम्हें किसने भेजा है हम तुमसे क्या फायदा हो सकता है हम तुम्हें क्या दें आदि आदि। अकेले अर्थाभाव ने हमें स्वास्थ्यहीन बुद्धिहीन, धनहीन, शान्ति चरित्रहीन

पूर्णिमा के कानो म उसके शब्द स्वर आ रहे थे। उसने आगे सुना—

क्या विवशता थी, कि तुम न बोल पाए ?
क्या विवशता थी कि हम न रोक पाए ?
मधु मिलन वरदान, अभिशाप न हुआ।
नैन आसू गिर न पाया, अचना फिर क्या हुई ?

शब्द और वाणी, दोनो परिचित निरन्तर पूर्णिमा के कानो मे आ रहे थे मगर, वह कुछ भी कहने-करने म असमर्थ थी। उसने आगे और सुना—

रूप यौवन प्रेम प्रतिमा निखर आय,
नत नीपर आरती मे पथ सजाय,
श्वास सरगम, अश्रुमय गायन हुआ।
तुमको अपना कर न पाया साधना फिर क्या हुई ?

मगर अब उसकी आखे बन्द हो रही थी। उनम आसू टपक रहे थे। गीत भी बन्द हो गया था। डाक्टर ने आकर देखा कि पूर्णिमा का शरीर शीतल पडा है। उसम ऊष्मा नही थी। उसने हृदय की गति का टटोला। वह धीरे धीरे बन्द हो रही था। प्रशाल मे पूर्णिमा के नारे लग रहे थे। *पूर्णिमा शीतल शान्त मच के एक कमरे म लेटी हुई थी। डाक्टर की सलाह से तुरन्त उसे अस्पताल ले जाया गया। वहा चिकित्सक उस पर अपने प्रयासो की प्रतिक्रिया देखते रहे। जयसिंह और सत्य उनके निणय की प्रतीक्षा म रात भर आशा और निराशा म जगते रहे। कुछ समय के लिए जयसिंह की आख लग गई। उठा तो मालूम हुआ कि शवघर म किसी को भेजा गया है। जाकर देखा तो दो इन्सान पास पास एक-दूसरे के सहारे पडे थे एक पुरुष एक स्त्री, एक जीवित एक मत सत्य और पूर्णिमा।*

यदि आप चाहते हैं
कि राष्ट्रभाषा मे प्रकाशित होने वाली
नित नई उत्कृष्ट पुस्तकों का परिचय
आपको मिलता रहे
तो कृपया अपना पूरा पता
हम लिख भेजें ।
हम आपको इस विषय मे
नियमित सूचना देते रहगे ।